नई दिल्ली
रविवार, 18 मई, 2025, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-7 अंक-30 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

शिक्षा क्षेत्र में न्यू नॉर्मलः ज्ञान के केन्द्रों में इस तरह फैलाया जा रहा है अज्ञान का अंधकार 4
पारिस्थितिकी विनाश पर जागना जरूरी 6

ब्लैकआउट ड्रिल का सच 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

सिर्फ बम से नहीं किया जा सकता आतंक का खात्मा

राजनीतिक और आर्थिक रणनीतियों के बिना सैन्य अभियान से अस्थायी सामयिक लाभ के अलावा कुछ भी हासिल नहीं होता

अशोक स्वैन

पहलगाम में 22 अप्रैल को 26 निर्दोष पर्यटकों की नृशंस हत्या ऐसा भयानक हमला था जिसने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। ऐसे में निर्णायक कार्रवाई के लिए लोगों का आक्रोश समझ में आता है। इसके बाद भारत ने पाकिस्तान के भीतर सैन्य कार्रवाई की जिससे दो परमाणु-शक्तिसंपन्न पड़ोसी पूर्ण युद्ध के कगार पर जा खड़े हुए, जब तक कि तीन दिनों के खतरनाक तनाव के बाद ट्रंप प्रशासन ने युद्ध विराम के लिए हस्तक्षेप नहीं किया। (युद्ध विराम कैसे हुआ, इस पर भी 'नैरेटिव वार' छिड़ गया है, लेकिन फिलहाल इसे एक तरफ रख देते हैं।)

हम जिस हकीकत को नजरअंदाज करते रहे हैं, वह यह है कि आतंकवाद को केवल सैन्य कार्रवाई से नहीं हराया जा सकता। अफगानिस्तान से लेकर नाइजीरिया के गांवों तक, इतिहास इस बात के तमाम सबूत पेश करता है कि सैन्य कार्रवाई न केवल आतंकवाद के खात्मे में नाकामयाब रही है बल्कि अक्सर उसने उन हालात को और मजबूत बना दिया जो इसके फलने-फूलने में मददगार होते हैं।

आतंकी हमलों का जबरदस्त तरीके से जवाब देने की मनुष्य की प्रवृत्ति होती है। जब बेकसूर नागरिक मारे जाते हैं, तो बदला लेने की मांग बड़ी जोरदार और भावनात्मक रूप से मजबूर करने वाली होती है। हालांकि, इस सहज प्रवृत्ति ने देशों को बार-बार ऐसे रास्ते पर धकेला है जो आखिरकार आतंकवाद के औचित्य को कमजोर करने के बजाय उसे मजबूत ही करती है। 9/11 के हमलों के बाद अमेरिका ने 'आतंकवाद के खिलाफ युद्ध' का जो भयानक अभियान छेड़ा, वह अपने आप में इसका जीता-जागता उदाहरण है।

दो दशकों के दौरान अमेरिका ने इस अभियान पर तकरीबन 8 खरब डॉलर खर्च किए, कई शासनों को उखाड़ फेंका और कई महाद्वीपों में अनगिनत आतंकवादियों को मार गिराया। फिर भी इससे आतंकवाद का खात्मा नहीं हुआ, बल्कि असर उलटा ही हुआ। अलकायदा की जगह आईएसआईएस आ गया जिसने अफ्रीका और एशिया में सहयोगी संगठनों को जन्म दिया। तालिबान, जिसे 2002 में पराजित माना जाता था, आज फिर अफगानिस्तान पर राज कर रहा है। सबक इससे ज्यादा साफ नहीं हो सकता- आप गोलियों और बमों से आतंकवादियों को तो मार सकते हैं, लेकिन इन हथियारों से आतंकवाद का खात्मा नहीं कर सकते।

आतंकवाद विरोधी अभियानों के मामले में पाकिस्तान का अनुभव अपने आप में केस स्टडी है। उसने पिछले दशक में अपने कबायली इलाकों में जोरशोर से 'जर्ब-ए-अजब' जैसे अभियान शुरू किए, जिसमें आतंकवादियों के सुरक्षित ठिकानों को हमेशा के लिए खत्म करने का ऐलान किया गया था। इन अभियानों ने आतंकवादी समूहों को अस्थायी रूप से विस्थापित जरूर किया, लेकिन इनसे दस लाख से ज्यादा नागरिकों को भी विस्थापित होना पड़ा, पूरे के पूरे समुदाय तबाह हो गए और इनसे पहले से ही हाशिये पर पड़े लोगों के बीच अलगाव की भावना और गहरी हो गई। आज, पाकिस्तान को तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान (टीटीपी) जैसे समूहों के फिर से उभरने से गंभीर खतरे का सामना करना पड़ रहा है। यह बताता है कि राजनीतिक और आर्थिक रणनीतियों के बिना सैन्य अभियान की भारी मानवीय कीमत तो होती ही है, इससे अस्थायी सामयिक लाभ के अलावा कुछ भी हासिल नहीं होता।

बोको हराम के खिलाफ नाइजीरियाई सरकार का एक दशक लंबा अभियान इस दुष्चक्र को साफ-साफ दिखाता है। देश के उत्तर-पूर्व में स्थानीय विद्रोह के रूप में शुरू हुआ यह आंदोलन अब कई घातक गुटों को जन्म दे चुका है जिनमें आईएसआईएस-पश्चिम अफ्रीका प्रांत भी शामिल है, जिसने लेक चाड बेसिन में अपनी पैठ बना ली है और हमलों के लिए ड्रोन का भी इस्तेमाल कर रहा है।

आतंकवाद-विरोध का यह बुनियादी विरोधाभास हैः जब राज्य नागरिक आबादी को पीड़ित करने वाली रणनीति अपनाते हैं, तो वे आतंकवादियों की फौज को बढ़ाने की सबसे बड़ी वजह बन जाते हैं।

अफ्रीका के साहेल क्षेत्र में फ्रांस का अनुभव एक और चेतावनी भरी कहानी बताता है। लगभग एक दशक तक फ्रांस ने माली, नाइजर और बुर्किना फासो में जिहादी समूहों के खिलाफ अपने आतंकवाद विरोधी अभियान में हजारों सैनिकों को तैनात किया, अनगिनत हवाई हमले किए और अरबों यूरो खर्च किए। फिर भी आतंकी खतरा घटा तो नहीं ही, पूरा इलाका हिंसा की जद में आ गया। स्थानीय आबादी फ्रांसीसी सेना को कब्जा करने वाली ताकत और अपनी सरकारों को उनकी नाजायज कठपुतली के रूप में देखने लगी। 2022 में जब फ्रांस वापस हुआ, तब तक सुरक्षा हालात नाटकीय रूप से खराब हो चुके थे, जिहादी समूहों ने बड़े इलाके पर कब्जा कर लिया था और पश्चिम विरोधी भावना अपने चरम पर थी।

इसका मतलब यह नहीं कि देशों को उचित प्रतिक्रिया के बिना आतंकवादी हमलों को निष्क्रिय होकर स्वीकार कर लेना चाहिए। राज्यों का अपने नागरिकों को हिंसा से बचाने का अधिकार और दायित्व दोनों है। हालांकि, ऐतिहासिक सबूत दिखाते हैं कि स्थायी सुरक्षा सैन्य बल पर निर्भरता के जरिये नहीं बल्कि लक्षित सुरक्षा उपायों को राजनीतिक और आर्थिक रणनीतियों के साथ मिलाकर लागू करने से पाई जा सकती है क्योंकि इससे उग्रवाद की बुनियादी वजहों को दूर किया जा सकता है।

इस मामले में श्रीलंका और कोलंबिया के बीच का अंतर खास तौर पर काबिलेगौर है। 2009 में तमिल टाइगर्स के खिलाफ श्रीलंका के क्रूर सैन्य अभियान ने संगठन को कुचलने में कामयाबी हासिल की, लेकिन हजारों नागरिकों की जान की कीमत पर और उन राजनीतिक शिकायतों को संबोधित किए बिना, जिनकी वजह से संघर्ष शुरू हुआ। आज, तमिल अलगाव बना हुआ है और भविष्य में हिंसा की स्थितियां बनी हुई हैं। इसके उलट कोलंबिया को देखें। उसने एफएआरसी (रिवॉल्यूशनरी आर्म्ड फोर्सेज ऑफ कोलंबिया) विद्रोहियों के साथ 2016 के शांति समझौते से अहम कामयाबी जरूर पाई है। राजनीतिक बातचीत, भूमि सुधार और पूर्व लड़ाकों को मुख्यधारा में लाने के कार्यक्रमों के साथ सैन्य दबाव के जरिये कोलंबिया ने वह हासिल किया जो सालों के अकेले सैन्य टकराव से संभव नहीं हुआ।

शेष पेज 2 पर ▸

चौकस श्रीनगर की डल झील पर सुरक्षा में तैनात जवान। पहलगाम में आतंकी हमले के बाद कश्मीर में सुरक्षा व्यवस्था और मजबूत की गई है।

पाकिस्तान का अनुभव केस स्टडी है। उसने कबायली इलाकों में 'जर्ब-ए-अजब' जैसे अभियान शुरू किए। इनसे आतंकवादी समूह अस्थायी रूप से विस्थापित जरूर हुए, लेकिन इनसे दस लाख से ज्यादा नागरिकों को भी विस्थापित होना पड़ा और हाशिये पर पड़े लोगों में अलगाव की भावना और गहरी हुई

कृपया पेज 3 और 5 भी देखें

कश्मीरी आवाम का भरोसा जीतने की जरूरत

जम्मू-कश्मीर के लिए मानवीय और रणनीतिक- दोनों नजरिये से व्यापक सहानुभूतिपरक समझदारी की दरकार है

हारुन रेशी

पहलगाम में आतंकवादी हमले और उसके बाद सुरक्षा बलों की कार्रवाई ने जम्मू-कश्मीर के लोगों को अंदर तक हिलाकर रख दिया है। माहौल में अंदरूनी टूटन भरी एक खामोशी सी तिर गई है और हालात समान्य होने जैसा खासी मशक्कत के बाद हासिल अहसास धराशायी हो गया है। स्थानीय अर्थव्यवस्था पहले से ही दबाव महसूस कर रही है और अब हिंसा, धमकी तथा जैकबूटों के साथ दुधारी जिंदगी की डरावनी यादें लौट आई हैं। बैसरन की वहशियाना हरकत के बाद आम कश्मीरियों के बीच से उभरी विरोध की अभूतपूर्व लहर शायद इसी निष्कर्ष के नतीजे में छठी इंद्री से उपजी होगी। लेकिन मीडिया के नकारात्मक कवरेज की आपाधापी, खासकर कुछ टेलीविजन चैनलों द्वारा स्थानीय लोगों को बदनाम करने की साजिश भरी कोशिशों के बीच आक्रोश की यह सकारात्मक लहर बहुत जल्द शांत हो गई। यह सब तो हुआ ही, सुरक्षा एजेंसियों ने तेजी दिखाकर जैसी व्यापक कार्रवाई की, उसने स्थानीय लोगों को वास्तव में निराश कर दिया।

पहलगाम हमले के तत्काल बाद पुलिस ने आतंकवादियों के 'ओवर ग्राउंड वर्कर' या 'हमदर्द' बताते हुए दो हजार से ज्यादा स्थानीय लोगों को गिरफ्तार कर लिया। कुछ लोगों को पब्लिक सेफ्टी एक्ट (पीएसए) के तहत हिरासत में लिया गया, जिसमें बिना किसी मुकदमे या औपचारिक आरोप के हिरासत में रखने का प्रावधान है। आतंकवादियों के कई पारिवारिक घरों को विस्फोटक लगाकर उड़ा दिया गया और पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर की उन महिलाओं को घाटी से निकाल दिया गया, जिन्होंने कश्मीरी पुरुषों से शादी की थी। देश के विभिन्न हिस्सों में आम कश्मीरियों को 'जवाबी' हिंसा झेलनी पड़ी, जिससे उनके अंदर अलगाव की भावना और गहरा गई। पहलगाम के बाद इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का एक वर्ग तो कश्मीरियों को निशाना बनाता दिखा ही, लेकिन मीडिया के बाकी हिस्से में भी स्थानीय लोगों की मुश्किलों को बहुत कम जगह मिली या उन्हें नजरअंदाज किया गया। कश्मीरियों की दुर्दशा के प्रति मीडिया की बेरुखी की चर्चा करते हुए स्थानीय छात्र ऐजाज़ वानी ने 'संडे नवजीवन' से कहाः "भारत और पाकिस्तान के बीच हाल ही में बढ़ी शत्रुता के दौरान भी, जम्मू-कश्मीर के लोगों को अपनों को खोने, निजी संपत्ति नष्ट होने और व्यापार के भारी नुकसान के रूप में इसका खामियाजा भुगतना पड़ा है... सीमा पार से हुई गोलाबारी में लगभग सत्ताईस लोग मारे गए (अकेले पुंछ में ही बीस) और पचास से अधिक गंभीर रूप से घायल हो गए। अनेक घर और अन्य संपत्तियां नष्ट हो गईं, फिर भी मीडिया ने इसकी ठीक से रिपोर्टिंग नहीं की। यहां तक कि प्रधानमंत्री ने भी 'युद्धविराम' की घोषणा के बाद राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में जम्मू-कश्मीर के लोगों के इन बलिदानों का जिक्र तक करना जरूरी नहीं समझा।"

सीमावर्ती क्षेत्रों के निवासियों की दुश्वारियों को पहचानने-समझने की जरूरत पर राजनीति विज्ञानी और टिप्पणीकार एलोरा पुरी ने कहाः "सरकार के लिए केन्द्र और राज्य- दोनों स्तरों पर तात्कालिक प्राथमिकता घाटी से जम्मू तक नियंत्रण रेखा (एलओसी) और यहां तक कि अंतरराष्ट्रीय सीमा (आईबी) पर हालात को संबोधित करना होना चाहिए। सबसे पहले और सबसे अहम बात, सरकार को यह स्वीकार करना चाहिए कि लोगों ने क्या-क्या झेला है।

पुरी ने कहा, "यह न सिर्फ मानवीय दृष्टिकोण से, बल्कि रणनीतिक कारणों से भी जरूरी है। भारत को न सिर्फ स्वीकारना बल्कि इस बात को उजागर भी करना चाहिए कि उसके लोगों ने कष्ट झेले हैं। रिश्तों की डोर फिर से बांधने और भरोसा बहाल करने के लिए दीर्घकालिक प्रक्रियाएं जारी रहनी चाहिए, लेकिन जम्मू-कश्मीर के लोगों की पीड़ा का स्वीकार करना और उनकी फौरी जरूरतों को पूरा करना सर्वोच्च प्राथमिकता पर होना चाहिए।"

वरिष्ठ पत्रकार और लेखिका नईमा अहमद महजूर का तर्क है कि अधिकारियों द्वारा कश्मीरियों के प्रति अपनाए गए सख्त रवैये से उनमें अलगाव की भावना और गहरी हो गई है। 'संडे नवजीवन' से बात करते हुए उन्होंने कहाः "आतंकवाद जम्मू-कश्मीर तक ही सीमित नहीं है; यह एक वैश्विक घटना है। क्या हमने अन्य देशों में (अपने ही लोगों के खिलाफ) इसी तरह के कठोर उपाय देखे हैं? सैन्यवादी नीति ने उन्हें पहले ही अलग-थलग कर दिया है, जो पहलगाम नरसंहार के विरोध में बड़ी तादाद में बाहर आए थे। कश्मीरी अपनी वफादारी दिखाने के लिए भला और कर भी क्या सकते हैं?"

उन्होंने कहा कि खुफिया चूक की जांच करने के बजाय सरकार ने आम नागरिकों को निशाना बनाना जरूरी समझा। उन्होंने पूछा, "आप (स्थानीय लोगों पर) छापे डालते और तलाशी लेते हैं, आप सैकड़ों निर्दोष कश्मीरी युवकों को गिरफ्तार करते हैं। आप संदेश क्या दे रहे हैं?" सुरक्षा चूक के आरोपों के अलावा, आलोचकों ने हमलावरों को पकड़ने में विफलता पर भी चिंता जताई है।

नाम न बताने की शर्त पर एक शिक्षाविद ने कहाः "इस तरह के हमले रोक पाने में विफलता को कोई भी समझ सकता है और स्वीकार भी कर सकता है। लेकिन गंभीर बात यह है कि हम अब तक आतंकवादियों को नहीं पकड़ पाए। हमारी धरती पर आतंकवाद को बढ़ावा देने में पाकिस्तान का हाथ होना साबित करने के लिए उनका पकड़ा जाना बहुत जरूरी है। 2008 के मुंबई हमलों में उनकी संलिप्तता साबित करने में हम सिर्फ इसलिए सफल हुए, क्योंकि हमने (अजमल) कसाब को न सिर्फ पकड़ा, उसे अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सामने पेश किया और यह सुनिश्चित किया कि उसे देश के कानून का सामना करना पड़े।

शेष पेज 2 पर ▸

मुआयना कुपवाड़ा में बने बंकरों का निरीक्षण करते मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला।

पहलगाम के बाद इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का एक वर्ग तो कश्मीरियों को निशाना बनाता दिखा ही, लेकिन मीडिया के बाकी हिस्से में भी स्थानीय लोगों की मुश्किलों को बहुत कम जगह मिली या उन्हें नजरअंदाज किया गया। अधिकारियों के कश्मीरियों के प्रति अपनाए गए सख्त रवैये से अलगाव की भावना और गहरी हो गई है

सिर्फ बम से नहीं किया जा सकता आतंक का खात्मा

पेज एक का शेष

वहां हिंसा में खासी कमी आई, हालांकि एफएआरसी का एक अलग हुआ गुट अब भी सक्रिय है।

भारत को इतिहास के सबक पर गौर करना चाहिए जो बताता है कि सैन्य प्रतिशोध तात्कालिक भावनात्मक संतोष दे सकता है, लेकिन इसका दीर्घकालिक रणनीतिक लाभ सीमित है। पाकिस्तान की आंतरिक अस्थिरता और विभिन्न आतंकवादी समूहों के साथ उसके जटिल संबंध सार्थक आतंकवाद विरोधी सहयोग को मुश्किल बनाते हैं, लेकिन यह असंभव नहीं।

भारत को बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना होगा। इसमें हमलों को होने से पहले ही रोकने के लिए खुफिया क्षमताओं को मजबूत करना, पाकिस्तान पर कूटनीतिक और आर्थिक साधनों से दबाव डालना कि वह खुद अपनी जमीन पर आतंकवादी समूहों के खिलाफ कार्रवाई करे, तथा समुदायों की वाजिब शिकायतों को दूर करना शामिल है क्योंकि ये शिकायतें ही कट्टरपंथ की जमीन तैयार करती हैं।

आतंकवाद मुख्यतः सैन्य नहीं बल्कि राजनीतिक समस्या है। आतंकवादी समूहों की रणनीति आम तौर पर अतिवादी प्रतिक्रिया को भड़काना है, जिससे नागरिक आबादी अलग-थलग पड़ जाए, सरकारी संस्थाओं को बदनाम किया जाए और नए लोगों की भर्ती को जारी रखा जाए। जब देश इस जाल में फंस जाते हैं, तो वे आतंकवादियों के हाथों में खेलने लगते हैं। अमेरिका ने इराक और अफगानिस्तान में भारी कीमत चुकाकर यह सबक सीखा है। भारत उन गलतियों को दोहराने का जोखिम नहीं उठा सकता।

शुद्ध सैन्य टकराव का रास्ता लुभाता है क्योंकि यह निर्णायक कार्रवाई और तुरत-फुरत नतीजा देने का भ्रम पैदा करता है। लेकिन पिछले बीस सालों के सबक साफ हैं: जब देश खुद को प्रतिशोध के चक्र में फंसने देते हैं तो आतंकवादी हारकर भी जीत जाते हैं। भारत अब चौराहे पर है। वह टकराव बढ़ाने के उस प्रचलित रास्ते पर बढ़ सकता है जिस पर चलकर तमाम देशों ने मुंहकी ही खाई है, या वह एक नया रास्ता तैयार कर सकता है जो लगातार संघर्ष के बजाय स्थायी शांति की उम्मीद देता है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन के उप्सला विश्वविद्यालय में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं।

आतंकवाद मुख्यतः सैन्य नहीं बल्कि राजनीतिक समस्या है। आतंकवादी समूहों की रणनीति आम तौर पर अतिवादी प्रतिक्रिया को भड़काना है जिससे नागरिक आबादी अलग-थलग पड़ जाए, सरकारी संस्थाओं को बदनाम किया जाए और नए लोगों की भर्ती जारी रखी जाए

अवाम का भरोसा फिर से जीतने की जरूरत

पेज एक का शेष

लेकिन पहलगाम के हमलावर कहां गए? क्या वे जंगल में गायब हो गए?"

गौरतलब है कि पहलगाम और पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर (पीओके) के बीच निकटतम सीमा बिंदु पुंछ में है, जो सड़क मार्ग से लगभग 175 किलोमीटर दूर है। घने जंगलों से पैदल यात्रा करने पर, पहलगाम से पुंछ तक की यात्रा में, अनुमानतः एक सप्ताह से अधिक समय लग सकता है। आलोचक पूछ रहे हैं कि क्या नागरिक आबादी में संदिग्ध 'सहानुभूति रखने वालों' को निशाना बनाने पर ध्यान केन्द्रित करने से आतंकवादियों की तलाश पर ग्रहण लग गया है।

बढ़ते तनाव के बीच विश्लेषकों का मानना है कि दमन नहीं, बल्कि सुलह ही आगे बढ़ने का रास्ता है। कश्मीर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान विभाग के पूर्व प्रमुख प्रो. नूर अहमद बाबा 'भावनात्मक एकीकरण' वाली नीति अपनाने की वकालत करते हैं। बाबा ने 'संडे नवजीवन' से कहा, "भारत सरकार की असल चुनौती जम्मू-कश्मीर के लोगों का राष्ट्र की मुख्यधारा में भावनात्मक एकीकरण करना है। यह एकीकरण सभी स्तरों पर होना चाहिए। ऐसी कोई भी कार्रवाई टाली जानी चाहिए, जिसमें लोगों को इस प्रक्रिया से अलग-थलग करने का जोखिम हो। सरकार को आतंकवाद के खिलाफ सख्त कार्रवाई करते हुए आम लोगों के साथ सहानुभूति और समझदारी से पेश आना चाहिए ताकि उनका दिल जीता जा सके।"

आम राय है कि सरकार ने पहलगाम कांड के बाद हुए सार्वजनिक विरोध प्रदर्शनों के दौरान सामने आई सद्भावना को आगे बढ़ाने का अवसर खो दिया। महजूर चेतावनी के स्वर में कहते हैं, "यह कश्मीर के घाव भरने और एकजुटता के इजहार का बड़ा अवसर था... लेकिन चुनिंदा दंडात्मक कार्रवाइयों ने भविष्य को लेकर निराशा की भावना को जन्म दे दिया है। इस नजरिए के दीर्घकालिक नतीजे होंगे।"

सवाल उठता है: क्या यह अलगाव जम्मू-कश्मीर में राष्ट्र-विरोधी भावनाओं को उभरने का मौका देगा? महजूर की आशंका है कि हालिया कार्रवाई ने 'निष्क्रिय पड़े' इलाकों को फिर से सक्रिय न कर दिया हो!

पाकिस्तान के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोग भी अब पाकिस्तानी सेना के दमनकारी रवैये को समझने लगे हैं, खास तौर पर पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री इमरान खान को पद से हटाकर उन्हें जेल में डाले जाने और अपने ही लोगों के प्रति पाकिस्तानी सेना की अत्याचारी नीतियों के बाद। महजूर का मानना है कि इमरान खान कश्मीरी युवाओं के बीच लोकप्रिय हैं और वे पाकिस्तानी सेना की अत्याचारी नीतियों तथा अनुच्छेद 370 रद्द करने पर पाकिस्तान के बदलते रुख से तंग आ चुके हैं। "वे यह सोचकर दूर जाने लगे थे कि उन्हें आतंकवाद के दौरान 'तोप के चारे' के रूप में इस्तेमाल किया गया था," लेकिन दोनों देशों के बीच इस सबसे हालिया शत्रुतापूर्ण आदान-प्रदान ने "पिछले कुछ वर्षों में निष्क्रिय पड़े पाकिस्तान समर्थक गुट की उम्मीदों को फिर से जगा दिया है।" अन्य विश्लेषकों का मानना है कि भारत को विश्वास बहाली के उपाय (सीबीएम) तत्काल शुरू करने की जरूरत है, जिसमें गहरे पैठी शिकायतों को दूर करने और अलगाव का मुकाबला करने के लिए एक सहानुभूतिपूर्ण नजरिये के साथ सैन्य नीतियों पर संवाद, विकास और सुलह को प्राथमिकता देना शामिल हो। एक अन्य विश्लेषक ने नाम न बताने की शर्त पर कहा, "सीबीएम में बंदियों की रिहाई, कठोर कानूनों को निरस्त करना (विशेष रूप से 2019 के पुनर्गठन अधिनियम के माध्यम से पेश किए गए) पीड़ितों के लिए मुआवजा, हाल ही में नुकसान झेलने वालों का पुनर्वास और बढ़ती बेरोजगारी दूर करने वाले कदम शामिल हो सकते हैं।"

दरअसल, जो बात अधर में लटकी है, वह मानवीय दृष्टिकोण से सिर्फ कश्मीरियों के हित ही नहीं हैं, बल्कि भारत के व्यापक रणनीतिक हित, उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा और एकता भी हैं। ■

कश्मीर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान विभाग के पूर्व प्रमुख प्रोफेसर नूर अहमद बाबा 'भावनात्मक एकीकरण' वाली नीति अपनाने की वकालत करते हैं। ऐसी कोई भी कार्रवाई टाली जानी चाहिए जिसमें लोगों को इस प्रक्रिया से अलग-थलग करने का जोखिम हो

राज्य 360° महाराष्ट्र

बुलेट ट्रेन का पता नहीं, संकट में लोकल ट्रेन यात्री

मुंबई में मेट्रो के विस्तार के बावजूद लोगों की हताशा को और बढ़ा रही हैं भीड़भाड़ वाली लोकल ट्रेनें, नहीं किए जा रहे जरूरी एहतियाती उपाय

मजबूरी लोकल ट्रेनों में दरवाजों पर लटककर यात्रा करने को मजबूर महिला यात्री।

नवीन कुमार

मुंबई में स्टैंड-अप कॉमेडियन अक्सर बृहन्मुंबई नगर निगम (बीएमसी) की तुलना "सामूहिक विनाश के हथियार" से करते हैं। यह टिप्पणी शहरी बुनियादी ढांचे के साथ और शहर की हताशा को दर्शाती है। जैसे-जैसे लंबे समय से स्थगित चल रहे बीएमसी के चुनाव करीब आ रहे हैं, मुंबई की सड़कों, फुटपाथों और पुलों की खस्ताहालत के बारे में लोग मुखर हो रहे हैं। मेट्रो के विस्तार के बावजूद गड्ढे, जाम और भीड़भाड़ वाली लोकल ट्रेनें लोगों की हताशा को और बढ़ा रही हैं।

पूर्व मुख्यमंत्री उद्धव ठाकरे बुलेट ट्रेन परियोजना को दिखावटी बताकर आलोचना करते रहे हैं। उनका कहना है कि प्रतिदिन लाखों को सेवा प्रदान करने वाले मुंबई के उपनगरीय रेल नेटवर्क पर सरकार की वास्तविक प्राथमिकता होनी चाहिए। आंकड़े चौंकाने वाले हैं। पिछले 20 वर्षों में मुंबई की रेल पटरियों पर लगभग 50,000 लोगों की जान गई है- करीब 10 प्रतिशत ट्रेन से गिरने से जबकि अधिकांश की मौत पटरियां पार करते समय हुईं। अकेले 2024 में 2,468 ऐसी मौतें हुईं।

पूर्व पार्षद रामदास कांबले बताते हैं कि उपनगरीय ट्रेनें मध्य और पश्चिमी रेलवे के अधिकार क्षेत्र में आती हैं, बीएमसी या राज्य सरकार के नहीं। शहर की व्यापक सार्वजनिक परिवहन प्रणाली की उपेक्षा यात्रियों को प्रभावित करती है। किराया वृद्धि, बेस्ट बस सेवाओं में कमी आदि ने स्थानीय ट्रेनों में भीड़ और बढ़ा दिया है। शिवसेना (यूबीटी) बीएमसी चुनाव में इसे मुद्दा बनाने की योजना बना रही है।

एक भीड़ भरी लोकल ट्रेन के फुटबोर्ड से चिपकी महिलाओं का वायरल वीडियो भी मुंबईकरों में कोई हलचल नहीं मचा पाया जबकि यह रोजमर्रा की सच्चाई है। हजारों लोग रोज ऐसे ही यात्रा कर जान जोखिम में डालने को मजबूर हैं। रेलवे ऐसी दुर्घटनाओं से होने वाली मौतों पर तो नजर रखता है लेकिन गंभीर रूप से घायलों के बारे में कोई उसके पास शायद ही कोई डेटा हो।

यह मामला तब सवालों में आया जब 9 मई को आया कल्याण से एक महिला ट्रेन 40 मिनट देर से आई। जगह न होने के कारण कई महिलाओं ने फुटबोर्डिंग का सहारा ले रखा था। कुछ लोगों का कहना था कि क्या हुआ? और क्या पुरुष यात्री ऐसा नहीं करते। कुछ ने यात्रियों को ही जिम्मेदार ठहराया जबकि अन्य ने इसके लिए 'बीमारू राज्यों' (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश से आए 'बाहरी लोगों' को दोषी ठहराया और यह भी कहा कि जब तक उन्हें बाहर नहीं निकाला जाता, हालात नहीं सुधरेंगे। बहुत सारे लोगों ने इसका कारण व्यवस्थागत विफलताओं को बताया। रेलवे भी इस समस्या को स्वीकारता है। व्यस्त समय में यात्री ठूस दिए जाते हैं। समाधान- जैसे ट्रेन की आवृत्ति बढ़ाने, समय की पाबंदी में सुधार करने और फुटबोर्डिंग रोकने जैसे समाधान के बारे में कहना जितना आसान है, करना उतना आसान नहीं। स्वचालित दरवाजों का विचार 2015 से ही चल रहा है लेकिन सफलता नहीं मिली है। 2019 में तत्कालीन रेल मंत्री पीयूष गोयल ने कहा था कि उन्हें केवल एसी ट्रेनों में ही लगाया जा सकता है जहां वैसे भी अधिक किराये के कारण भीड़ कम होती है।

हालांकि, 2020 में नीति आयोग ने रेलवे को बताया था कि सभी उपनगरीय ट्रेनों में स्वचालित दरवाजे लगाए जाने चाहिए। रेलवे प्लेटफॉर्म स्क्रीन डोर (पीएसडी) पर भी विचार कर सकता है, खासकर उच्च घनत्व वाले स्टेशनों पर। लेकिन मुंबई की चुनौतियां अनूठी हैं। 200 यात्रियों के लिए डिजाइन किए गए गैर एसी कोच में अक्सर भीड़ वाले घंटों के दौरान 800 से अधिक यात्री हो जाते हैं।

जब दूर का सपना हो पीने का पानी

जल संकट ने महाराष्ट्र के सूखाग्रस्त गांवों में परेशान करने वाली सामाजिक परिघटना को जन्म दिया है: आवश्यकता प्रेरित बहुविवाह। जब पुरुष काम पर चले जाते हैं, अक्सर कई किलोमीटर दूर से पानी लाने का बोझ महिलाओं पर आ जाता है। जितनी अधिक पत्नियां, पानी लाने को उतनी ही ज्यादा यात्राएं। कभी विनम्रता और कभी मजाक में ग्रामीण स्वीकार करते हैं कि महिलाएं इन गांवों में शादी के लिए अनिच्छुक होती जा रही हैं।

हाल ही में वायरल हुए एक वीडियो से स्थिति की गंभीरता और स्पष्ट हो गई। इसमें नासिक जिले के पेठ तहसील के बोरीचीबारी गांव में एक महिला को रस्सी से बांधकर 40 फीट गहरे, लगभग सूखे कुएं में उतारा जा रहा है। पतली रस्सी से खतरनाक तरीके से बंधी महिला कुएं में उतरी जबकि अन्य अपनी बारी का इंतजार करती दिख रही थीं। ऐसे दृश्य गर्मी के महीनों में जल संकट से जूझ रहे कम-से-कम 16 जिलों में आम हैं।

मराठी मीडिया की रिपोर्ट बताती हैं कि बोरीचीबारी में शादियां बंद हो गई हैं। इनमें से कुछ गांवों में घर में पानी की आपूर्ति बनाए रखने के लिए एक आदमी का चार महिलाओं से शादी करना नई बात नहीं है। पत्नियों को तिरस्कारपूर्वक 'पानी वाली बाई' कहा जाता है और उनके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है। कार्यकर्ताओं का कहना है कि इन जिलों में ग्रामीण बार-बार बीमार पड़ते हैं और संभवतः कम उम्र में ही मर जाते हैं। सखाराम भगत कहते हैं कि उनके गांव की आबादी सिर्फ 500 लोगों की है। गर्मियों में जब पास का कुंआ सूख जाता है, तो भाटसा बांध से पानी लाने में 12 घंटे लग जाते हैं।

इन इलाकों में पीने का पानी सोने से भी ज्यादा कीमती है और इसकी काफी सुरक्षा की जाती है। उगवा के ग्रामीण अपने प्लास्टिक के पानी के टैंक और ड्रम बंद रखते हैं। चंदा वाकते कहती हैं कि जब वह बाहर जाती हैं, तो उन्हें अपने घर को बंद करने की जरूरत नहीं पड़ती, पर पानी के ड्रम बंद करना कभी नहीं भूलतीं। स्थानीय ग्राम पंचायत के सदस्य सचिन बाहा की शिकायत है कि 84 गांवों को पीने का पानी सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई खेड़ी योजना सिर्फ कागजों तक ही सीमित रह गई है।

यद्यपि यह शादियों का सीजन है, पर संभाजीनगर के तांड्या गांव में कोई शादी नहीं हो रही है। एशिया के सबसे बड़े बांधों में से एक जयकवाड़ी बांध तांड्या से 25-30 किलोमीटर दूर है। महिलाएं और स्कूल से लौटने के बाद बच्चे पानी के लिए यहीं जाते हैं। कवयित्री बहिणाबाई चौधरी के आसोदा गांव की लड़कियां आसोदा गांव में शादी से इनकार करने लगी हैं। ग्रामीण मेहमानों को एक गिलास पानी देने के बारे में कई बार सोचते हैं। अकोला जिले का उगवा गांव भी दुल्हन से वंचित हो रहा है।

राज्य सरकार ने एकीकृत वाटरशेड विकास कार्यक्रम, मराठवाड़ा जल ग्रिड परियोजना, गाद मुक्त धरन और जलयुक्त शिवार जैसी विभिन्न योजनाएं लागू की हैं। इसके बावजूद सरकार किसानों और ग्रामीणों को राहत देने में नाकाम रही है।

जल विशेषज्ञ महाराष्ट्र में इस गंभीर स्थिति के लिए कई कारकों को जिम्मेवार मानते हैं। छत्रपति संभाजीनगर के एक अनुभवी अर्थशास्त्री एच एम देरडा का कहना है कि जलयुक्त शिवार अभियान और जल बैराजों से गाद निकालना जैसी सरकारी पहल 'अवैज्ञानिक' थी।

इस सबके बीच उम्मीद की किरण भी दिख रही है। रेन वाटर हार्वेस्टिंग पर 2003 से काम कर रहे इंजीनियर उल्हास परांजपे ने 2020 तक 17 जिलों में 350 से अधिक ऐसी प्रणालियों का सफलतापूर्वक निर्माण किया है और हजारों लोगों को इसके सिद्धांत सिखाए हैं। इसके बावजूद पानी की समस्या बरकरार है। कोकण इलाके में भी पानी की कमी है। पानी फाउंडेशन के सीईओ सत्यजीत भटकल भी मानते हैं कि महाराष्ट्र के गांवों में पानी की समस्या बेहद विकराल है। उप मुख्यमंत्री एकनाथ शिंदे की वह घोषणा भी मजाक बनकर रही जिसमें उन्होंने कहा था कि अधिकारी सुनिश्चित करेंगे कि कोई प्यासा न रहे। आलोचकों का तर्क है कि जल संकट पर सरकार की गंभीरता के सबूत बहुत कम हैं। ■

व्यस्त समय में यात्री ठूंस दिए जाते हैं। समाधान- ट्रेन की आवृत्ति बढ़ाने, समय की पाबंदी में सुधार करने और फुटबोर्डिंग रोकने जैसे समाधान के बारे में कहना जितना आसान है, करना उतना आसान नहीं। स्वचालित दरवाजों का विचार 2015 से ही चल रहा है लेकिन सफलता नहीं मिली है

प्रकाशक: **पवन कुमार बंसल**; संपादक: **राजेश झा**; **पवन कुमार बंसल द्वारा दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड,** हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 11002 की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रित। दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 और द्वारा आर. सी. मल्होत्रा, दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित।

ऑपरेशन सिंदूर के बाद उठते 5 सवाल

सवाल है कि 'सक्रियता योग्य खुफिया जानकारी' क्या नहीं थी जिस पर भारतीय एजेंसियां सक्रियता दिखाने में नाकाम रहीं

हरजिंदर

पहलगाम के आतंकवादी हमले और उसके बाद हुए ऑपरेशन सिंदूर को लेकर जिस तरह से दावे और प्रतिदावे हो रहे हैं उससे कई सवाल उठते हैं जिनका जवाब शायर सरकार नहीं देगी। सबसे बड़ी बात यह है कि शायद ही कोई ये सवाल पूछे। लेकिन चर्चा करते हैं ऐसे ही कुछ सवालों की...

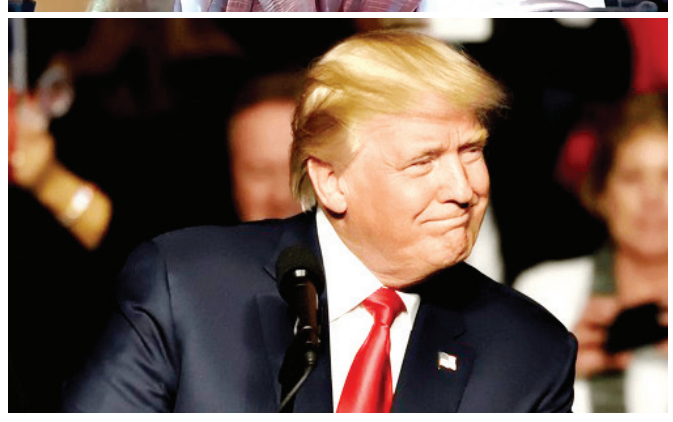

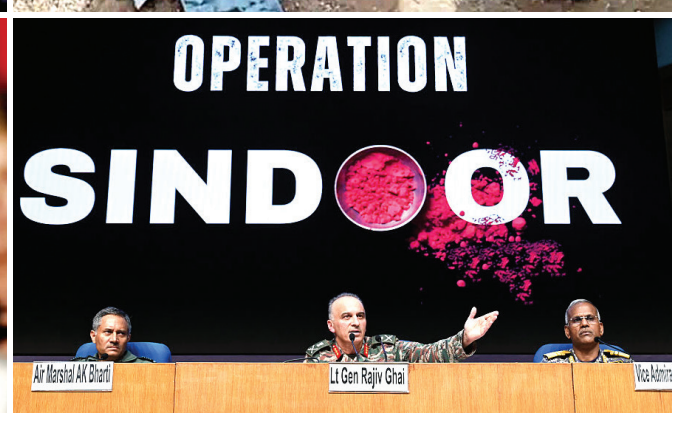

पहलगाम हमले के बाद बिहार की एक रैली में प्रधानमंत्री ने कहा था कि 'हम पृथ्वी के उस छोर तक उनका पीछा करेंगे' (ऊपर बाएं); क्षतिग्रस्त ड्रोन का मलबा; (नीचे बाएं) अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने फिर दावा किया कि उन्होंने शांति कराने में भूमिका निभाई; ऑपरेशन सिंदूर पर सेनाओं की संयुक्त ब्रीफिंग।

#1

पहलगाम को निशाना बनाया जा सकता है, ऐसी 'सक्रियता योग्य खुफिया जानकारियां' थीं, तो क्या सुरक्षा एजेंसियां उन पर कदम उठाने में नाकाम रहीं?

2 फरवरी से 22 फरवरी के बीच अमेरिका की तकनीकी और जियोस्पेशल इंटैलीजेंस कंपनी मैक्सर टेक्नोलॉजीज को पहलगाम की सैटेलाइट तस्वीरों के ढेर सारे ऑर्डर मिले। बताया गया है कि उसे पहलगाम और उसके आस-पास के संवेदनशील इलाकों की हाई रिज्योलूशन तस्वीरों के 12 आर्डर मिले। फिर ऐसे और ऑर्डर 12 अप्रैल को मिले, यानी आतंकवादी हमले से 10 दिन पहले। एक पाकिस्तानी जियोस्पेशल कंपनी उस समय मैक्सर की सहयोगी थी। 9 मई को द प्रिंट में सोमैय्या पिल्लई की रिपोर्ट के कुछ घंटे बाद ही मैक्सर ने इस कंपनी को अपने कारोबार से बाहर कर दिया।

सवालः क्या यह वह 'सक्रियता योग्य खुफिया जानकारी' नहीं है जिस पर भारतीय एजेंसियां सक्रियता दिखाने में नाकाम रहीं। पाकिस्तानी सहयोगी वाली कंपनी में सैटेलाइट तस्वीरों की मांग बढ़ने पर क्या एजेंसियों के कानों में घंटियां नहीं बज जानी चाहिए थीं? क्या भारतीय एजेंसियों को इस कनेक्शन का पता था? क्या यह जानकारी भी थी कि पाकिस्तानी कंपनी के संस्थापक अब्दुल्ला सईद को पहले पाकिस्तान के परमाणु ऊर्जा आयोग को गैर कानूनी ढंग से परमाणु तकनीक भेजने के मामले में सजा हो चुकी है।

#2

क्या युद्धविराम की मध्यस्थता का श्रेय ट्रंप प्रशासन को देकर पाकिस्तान ने कश्मीर मसले के 'अंतरराष्ट्रीयकरण' में फिर एक बार सफलता हासिल कर ली?

हालांकि, भारत ने अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप के इस दावे को खारिज करने में एड़ी चोटी का दम लगा दिया कि 'अमेरिका ने युद्धविराम की मध्यस्थता' की लेकिन इसे लेकर इस्लामाबाद के उत्साह ने किसी को भी संदेह में नहीं रहने दिया कि दोनों देशों के सैन्य संघर्ष को रोकने में ट्रंप प्रशासन की भूमिका को लेकर पाकिस्तान इतना खुश क्यों है। अमेरिका के विदेश मंत्री का किसी 'निरपेक्ष जगह' पर दोनों देशों की अगले दौर की वार्ता का प्रस्ताव और ट्रंप का 'हजारों साल पुरानी कश्मीर समस्या' में मध्यस्थता का प्रस्ताव क्या ऐसे राजनयिक संकेत नहीं दे रहे हैं कि पाकिस्तान कश्मीर समस्या में किसी तीसरे पक्ष को शामिल करने की चर्चा शुरू करने में कामयाब रहा। जबकि शिमला समझौते में यह तय हुआ था कि दोनों पड़ोसी देश समस्या आपस में ही सुलझाएंगे। बार-बार उनके प्रस्ताव के लिए ट्रंप का धन्यवाद व्यक्त करके इस्लामाबाद यह साबित करने की कोशिश करता रहा कि कश्मीर पर अंतरराष्ट्रीय समुदाय को ध्यान देना चाहिए। पाकिस्तान की यह दशकों पुरानी कोशिश रही है कि कश्मीर मसले का अंतरराष्ट्रीयकरण करके उसे यूएन जैसे मंचों पर उठाया जाए, जबकि भारत ने हमेशा ही इसका विरोध किया है। ट्रंप के मध्यस्थता के इस प्रस्ताव का परमाणु शक्ति संपन्न दो पड़ोसियों पर क्या दीर्घकालिक असर पड़ेगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता लेकिन इस मसले को उठाकर पाकिस्तान फिलहाल राजनयिक बढ़त में कामयाब रहा।

> हालांकि, भारत ने ट्रंप के इस दावे को खारिज करने में एड़ी चोटी का दम लगा दिया कि 'अमेरिका ने युद्धविराम की मध्यस्थता' की लेकिन इसे लेकर इस्लामाबाद के उत्साह ने किसी को भी संदेह में नहीं रहने दिया कि दोनों देशों के सैन्य संघर्ष को रोकने में ट्रंप प्रशासन की भूमिका को लेकर पाकिस्तान इतना खुश क्यों है

#3

क्या भारत की राजनयिक हार हुई?

पहलगाम हमले के बाद भारत पाकिस्तान को राजनयिक रूप से अलग-थलग करने में कामयाब नहीं हो सका। हमले में पाकिस्तान के शामिल होने के स्पष्ट सबूत देने के बाद भी जी-7, जी-20, ब्रिक्स या क्वाड शक्तिशाली विश्व संगठनों से पाकिस्तान की आलोचना करवाने में भारत नाकाम रहा।

ऑपरेशन सिंदूर के बाद भी किसी भी बड़े राष्ट्र ने भारत की सैन्य कार्रवाई का समर्थन नहीं किया। कुछ देशों ने संयम बरतने की बात जरूरी की लेकिन बदला लेने के भारत के अधिकार के समर्थन में कोई नहीं खड़ा हुआ। दूसरी तरफ चीन ने पाकिस्तान का खुला समर्थन किया। उसे आधुनिक हथियारों से लेकर निगरानी डेटा और खुफिया सहयोग भी दिया। संयुक्त राष्ट्र में इस्लामाबाद को बचाता दिखाई दिया। सुरक्षा परिषद की चर्चा में उसने पाकिस्तान के आतंकवादी गुटों के जिक्र को नरम करने के लिए दूसरे देशों की राजी करने की कोशिश की। चीन ने यूएन की सैंक्शन समिति में द रजिस्टेंस फोर्स का जिक्र भी नहीं होने दिया जिसने पहलगाम हमले की जिम्मेदारी ली थी। तुर्किये और अजरबैजान भी खुलकर पाकिस्तान के साथ खड़े दिखाई दिए। तुर्किये ने उसे अपना 'भाई' कहा और अपने छह सैन्य एयरक्राफ्ट एक समुद्री जंगी जहाज पाकिस्तान में तैनात कर दिए। सीमा पार आतंकवाद के तमाम सबूतों के बावजूद पाकिस्तान एक अरब डॉलर की वित्तीय मदद लेने में कामयाब रहा, यह भारत की एक और राजनयिक नाकामी थी।

#4

इस युद्ध में किसे मार गिराया गया और कहां निशाना चूक गया, इसके सरकारी दावों का किसी तीसरे पक्ष द्वारा मूल्यांकन नहीं हुआ है। इसके दावों को अगर हम किनारे कर दें, तो क्या भारत एक साथ 'दो मोर्चों पर युद्ध' के लिए तैयार है?

काफी बड़े रक्षा बजट और 700 अरब डॉलर के विदेशी मुद्रा कोष के साथ भारत लंबे समय तक युद्ध लड़ने में पाकिस्तान के मुकाबले आर्थिक तौर पर ज्यादा सक्षम है।

लेकिन भारत के रक्षा नेतृत्व ने साफ तौर पर कहा है कि भारत 'दो मोर्चों पर युद्ध' यानी चीन और पाकिस्तान दोनों से लड़ाई अब सिर्फ एक सैद्धांतिक आशंका नहीं है। कई विशेषज्ञों को लगता है कि भारत की मौजूदा ताकत, खासकर वायु शक्ति दो मोर्चों की जंग के हिसाब से कम है। चीन जिस तरह से 2020 से पाकिस्तान को लगातार हथियार और तकनीक दे रहा है और

हाल की मुठभेड़ के दौरान जिस तरह से उसने चीन को खुला सहयोग दिया है, उससे दो मोर्चों की लड़ाई ज्यादा कठिन लगने लगी है।

देश का नेतृत्व भारत की तैयारियों में विश्वास जरूर जता रहा है, लेकिन स्वतंत्र वैश्विक विश्लेषण दो मोर्चों की जंग की भारत की क्षमताओं पर सवाल जरूर उठाते रहे हैं।

#5

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के शब्दों में, भारत अब 'आतंकवादियों और आंतक का खुलकर समर्थन करने वाले देश' में कोई भेद नहीं करता। जुमले से आगे बढ़कर देखें, तो इसका वास्तविक अर्थ क्या है?

जाहिर है पाकिस्तान की ओर इशारा करने के अलावा मोदी यह कह रहे हैं कि भारत आतंक की किसी भी कार्रवाई को प्रायोजित मानेगा और फिर इसका माकूल जवाब भी देगा। इसका यह भी अर्थ हुआ कि पहलगाम के बाद भारत ने जो कार्रवाई की, उसमें संयम बरता गया लेकिन अगली बार यह जवाब और भी खतरनाक होगा।

विशेषज्ञ आतंकवाद को सैन्य तरीकों से खत्म करने की व्यर्थता की बात करते हैं। इतिहास इसका गवाह रहा है। नई सोच यह है कि आतंकवाद को लेकर शून्य बर्दाश्त की नीति तो अपनाई जाए लेकिन इसे लेकर हमेशा के लिए कोई लक्ष्मण रेखा खींचना शायद दुशमन की फितरत को ठीक से आंकना नहीं होगा। अन्य विशेषज्ञों का मानना है कि इस तरह की नीति से भारत को हर आतंकी हमले का एक ही तरह से जवाब देना होगा।

यह भी संभव है कि जुमलों भरी इस बात में कुछ ज्यादा ही गर्म हवा भरी गई हो ताकि इसका इस्तेमाल मोदी की मजबूत वाली छवि को आगे रखकर अगले कुछ महत्वपूर्ण विधानसभा चुनावों के हिसाब से पार्टी के आधार को बढ़ाया जा सके। ■

ऑपरेशन सिंदूर का रणनीतिक लेखा-जोखा

बैसरन नरसंहार नीति, प्रचारित धारणा और योजना की विफलता है। बुनियादी चूक थी 'शून्य आतंकवाद' का गलत आकलन

अजय साहनी

तमाशा खत्म हो चुका है और हम अब इसे भूलने की राह पर हैं। अगर हम शहीदों को याद करने के लिए नहीं ठहरते हैं और ऑपरेशन सिंदूर की कीमत और इससे हुए नफा-नुकसान का लेखा-जोखा नहीं करते हैं, तो यह 'बैसरन मैदान' में हुए नरसंहार से भी बड़ी त्रासदी होगी।

पिछले कुछ हफ्तों के घटनाक्रम और इस दौरान उठे सवालों की समीक्षा जरूरी है ताकि एक रणनीतिक 'बैलेंस शीट' तैयार की जा सके जो भावी नीतियों और प्रतिक्रियाओं की योजना बनाने में मददगार हो। इस संदर्भ में पहला सवाल तो यही है कि क्या बैसरन नरसंहार को रोका जा सकता था और क्या यह एक इंटेलिजेंस चूक थी? इस हमले के बाद हम सब खासे 'समझदार' हो गए हैं। ऐसी रिपोर्ट है कि 'इंटेलिजेंस चेतावनी' दी गई थी और इसमें खास तौर पर यह आशंका शामिल थी कि श्रीनगर में डल झील के आसपास पर्यटकों पर हमला हो सकता है। लेकिन यह वह जगह नहीं, जहां बैसरन की घटना हुई। इसके अलावा, यह शायद ऐक्शनेबल इंटेलिजेंस 'कार्रवाई योग्य खुफिया जानकारी' नहीं थी।

इससे पहले 18 मई 2024 को पहलगाम में दो पर्यटकों की लक्षित हत्या हो चुकी थी, जब आतंकवादियों ने जयपुर के एक जोड़े पर हमला किया था। इसके अलावा बैसरन हत्याकांड से पहले, 'साउथ एशिया टेररिज्म पोर्टल' ने वर्ष 2000 से जम्मू-कश्मीर में पर्यटकों की कम-से-कम 44 लक्षित हत्या की बात कही थी। यह समझने के लिए किसी विशेष प्रतिभा या असाधारण 'इंटेलिजेंस जानकारी' की जरूरत नहीं थी कि श्रीनगर या कश्मीर में कहीं और भी पर्यटकों पर हमला हो सकता है। लेकिन क्या उपलब्ध खुफिया जानकारी अतिरिक्त बल तैनात करने या बैसरन में प्रोटोकॉल की समीक्षा के लिए पर्याप्त थी? दूसरे शब्दों में, क्या खुफिया जानकारी 'कार्रवाई योग्य' थी? निसंदेह इसका जवाब है- नहीं।

बैसरन घटना दरअसल नीति, प्रचारित धारणा और योजना की विफलता थी। नीतिगत स्तर पर, 'शून्य आतंकवाद' के गलत आकलन के तहत कश्मीर को लाखों पर्यटकों के लिए खोलना बुनियादी गलती थी। (अनुमान है कि 2024 में यह संख्या 2.3 करोड़ होगी और बैसरन नरसंहार से पहले 2025 को लेकर जो उम्मीदें थीं, वह और भी ज्यादा थीं) घाटी जाने वाले पर्यटकों की भारी संख्या को 'सामान्य स्थिति' के सूचकांक के रूप में पेश करना एक तरह से हर पर्यटक की पीठ पर 'शूटिंग टार्गेट' टांग देने जैसा था। सभी संभावित जगहों को चिह्नित किए बिना और उन्हें पर्याप्त सुरक्षा कवर में रखे या नियंत्रित किए बिना घाटी आने के लिए लाखों पर्यटकों को लुभाना योजनागत विफलता थी जिसकी जांच के साथ-साथ इसकी जवाबदेही भी तय होनी चाहिए।

दोनों ओर से किए गए जोरदार दुष्प्रचार को देखते हुए ऑपरेशन सिंदूर के बाद सच्चाई का अंदाजा लगाना मुश्किल है। अहम है कि संघर्ष विराम के बाद दोनों ही पक्षों ने अपनी-अपनी जीत की घोषणा की, लेकिन उपलब्ध (और संभवतः दोषपूर्ण) साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि सामरिक और क्रियात्मक स्तर पर भारत मजबूत पक्ष के रूप में उभरा।

सामरिक तौर पर कहें तो नौ आतंकवादी ठिकानों के खिलाफ हमला पूरी सटीकता के साथ किया गया और इसकी पुष्टि करने वाले सबूत हैं। क्रियात्मक स्तर की बात करें तो पाकिस्तान की जवाबी कार्रवाई की पहली लहर में कुछ संभावित पराजय (जिसे भारत सरकार ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है) के बावजूद भारतीय सेनाएं पाकिस्तानी सेना की हर जवाबी कार्रवाई का दृढ़तापूर्वक जवाब देते हुए अपनी बढ़त बनाने में कामयाब रहीं जबकि पाकिस्तान भारत को नुकसान पहुंचाने में तुलनात्मक रूप से कम सफल रहा।

हालांकि, ऑपरेशन का रणनीतिक उद्देश्य अब भी हासिल नहीं हो पाया है। संघर्षविराम की घोषणा के बाद भी पाकिस्तान की ओर से ड्रोन ऑपरेशन और तोपखाने की गोलाबारी यह संदेश देते हैं कि इस्लामाबाद को अब भी खौफ नहीं है। जैश-ए-मोहम्मद, 'अलकायदा इंडियन सब कंटिनेंट' (एक्यूआईएस) और जमीयत उलेमा ए इस्लाम- सिंध सहित आतंकवादी और चरमपंथी संगठनों की ओर से बदले की धमकियां पहले ही दी जा चुकी हैं।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पाकिस्तान को भारत के खिलाफ अब तक के चार युद्धों में शिकस्त का सामना करना पड़ा (एक हकीकत जिसे वह नहीं मानेगा) और अब भी कश्मीर के अपने 'मूल मुद्दे' पर टिका है। इस संदर्भ में यह याद रखना चाहिए कि अमेरिका ने 14 साल तक पाकिस्तानी धरती पर आतंकियों और उनके ठिकानों के खिलाफ हजारों ड्रोन हमले किए, लेकिन पाकिस्तान ने तालिबान की मदद से हाथ नहीं खींचा और आखिरकार अफगानिस्तान से अमेरिका के जाने के बाद तालिबान काबुल की सत्ता पर काबिज हो गया। इस पृष्ठभूमि में यह मानना कि ऑपरेशन सिंदूर जैसे कभी-कभार होने वाले सैन्य हमले आतंकवाद में भागीदारी के लिहाज से निर्णायक प्रतिकार होंगे, केवल भ्रम है।

प्रधानमंत्री मोदी ने घोषणा की है कि ऑपरेशन सिंदूर को केवल स्थगित किया गया है और जैसे ही कोई भी पाकिस्तान समर्थित आतंकी हमला होगा, इसे फिर शुरू कर दिया जाएगा। उन्होंने इसे 'न्यू नॉर्मल' बताया। इस तरह, दंडात्मक सैन्य हमले पाकिस्तान के सिर पर तलवार की तरह लटके रहेंगे; लेकिन वे भारत पर भी उतने ही लटके रहेंगे। 'न्यू नॉर्मल' ने नई दिल्ली पर यह दायित्व डाल दिया है कि वह भविष्य में होने वाली हर आतंकवादी कार्रवाई को 'युद्ध की कार्रवाई' के रूप में सैन्य रूप से जवाब दे; लेकिन ऐसी हर प्रतिक्रिया के दोहराव पर पाकिस्तान का जवाब भी आएगा, क्योंकि हालिया कार्रवाई वांछित 'निवारण' हासिल करने में विफल रही; और ऐसी हर कार्रवाई 'कश्मीर मुद्दे' को 'अंतरराष्ट्रीयकरण' की ओर आगे बढ़ाएगी।

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने कहा है कि उन्होंने भारत-पाक संघर्ष में पड़ना इसलिए चुना क्योंकि 'लाखों अच्छे और बेकसूर लोग मारे जाते', इस तरह उन्होंने परमाणु युद्ध के डर का फायदा उठाया- एक ऐसा हथियार जिसका इस्तेमाल पाकिस्तान अक्सर अंतरराष्ट्रीय समुदाय को बरगलाने के लिए करता है। दक्षिण एशिया विवादों से भरा क्षेत्र है और अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी ताकतें परमाणु डर की आड़ में यहां अपनी भूमिका बढ़ाने की ताक में हैं और यह भारतीय हितों के विपरीत हो सकता है।

इसके अलावा भारत के 'नए सामान्य' में कई जटिल कारकों की कीमत शामिल है। सीमा पार बार-बार सैन्य हस्तक्षेप भारत को एक अस्थिर देश के रूप में पेश करेगा और यह निवेशकों में अरुचि लाएगा, खास तौर पर चीन से कई महत्वपूर्ण उद्योगों के तत्काल आने की संभावनाओं को कमजोर करेगा। ऑपरेशन सिंदूर जैसी कार्रवाइयों ने पूरे देश में सामान्य जीवन में खलल पैदा किया है जिसमें गलत सूचनाओं के क्रूर और उन्मादी अभियान अविश्वास और क्रोध का माहौल पैदा कर रहे हैं।

ब्रीफिंग ऑपरेशन सिंदूर के बारे में जानकारी देते कर्नल सोफिया कुरैशी, विदेश सचिव विक्रम मिसरी और विंग कमांडर व्योमिका सिंह।

> ऑपरेशन का रणनीतिक उद्देश्य हासिल नहीं हो पाया। संघर्षविराम की घोषणा के बाद भी ड्रोन ऑपरेशन और गोलाबारी संदेश देते हैं कि पाकिस्तान को अब भी खौफ नहीं। ऊपर से जैश समेत तमाम आतंकवादी और चरमपंथी संगठनों की ओर से बदले की धमकियां पहले ही मिल चुकी हैं

यह निश्चित रूप से देश के आर्थिक जीवन और इसकी 'विकास कहानी' को प्रभावित करेगा। अहम बात यह है कि आतंकवाद को लगातार प्रायोजित करने के लिए पाकिस्तान पर दंड लगाने के लिए भारत के पास सैन्य कार्रवाई ही एकमात्र विकल्प नहीं है। पाकिस्तान के खिलाफ असैन्य लेकिन अधिक नुकसानदायक उपाय खोजने की जरूरत है ताकि उसे अपनी करनी की कीमत चुकानी पड़े और आखिरकार इसे सहन करना उसकी क्षमता से बाहर हो जाए।

2016 की सर्जिकल स्ट्राइक और 2019 की बालाकोट बमबारी की तुलना में बेहतर सफलता हासिल करने के बावजूद ऑपरेशन सिंदूर ने रणनीतिक बढ़त या प्रतिकारात्मक खौफ सुनिश्चित किए बिना रणनीतिक स्थिरता को कमजोर किया है। पाकिस्तान सामने आई कमजोरियों को दूर करने के लिए अपनी रक्षा को मजबूत करेगा, यहां तक कि आतंकवादी समूह भी जमीन के और भीतर ठिकाने बना लेंगे। हाल के संघर्ष से दोनों की कमजोरियों और मजबूतियों का खुलासा हुआ और इससे हथियारों की होड़ तेज होगी और इसमें चीन पाकिस्तान की हर तरह से मदद करेगा। अगर रक्षा के लिए भारत पहले की तरह ही बजट आवंटन के मामले में कंजूस रहता है तो किसी भी भावी कृत्य के खिलाफ पाकिस्तान पर निर्णायक बढ़त हासिल करना मुश्किल होगा। ■

डॉ. अजय साहनी 'साउथ एशिया टेररिज्म पोर्टल' की देखरेख करने वाले इंस्टीट्यूट फॉर कॉन्फ्लिक्ट मैनेजमेंट के संस्थापक सदस्य और कार्यकारी निदेशक हैं।

अज्ञान से पराजित होने के कगार पर ज्ञान के केन्द्र

शिक्षा का अर्थ ही पलट दिया गया है। बहुलता और उदारता के मूल्य शिक्षा संस्थानों में जिंदा न रह पाए, तो लोकतंत्र भी जिंदा न रह पाएगा

रूपरेखा वर्मा

विडंबना दिल्ली विश्वविद्यालय में आयोजित हवन-पूजन यह समझने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है कि शिक्षा संस्थानों का क्या हाल बना दिया गया है।

मनुष्य प्रजाति ने मानवीय जीव बनने की कठिन और लंबी यात्रा तय की है। सामूहिकता के कबीलाई रूप से निकल के अधिक बहुरूपी समाज में दाखिल होना, अपने प्रेम और सहानुभूति का अपने से फर्क समूहों तक विस्तार देना, न्याय की ऐसी परिकल्पना करना जो शक्ति केन्द्रित न हो, अनुमान आधारित विश्वास से वैज्ञानिक विश्वास की ओर बढ़ना, वग़ैरह बहुत उलझे और कठिन सफर रहे होंगे।

इसी सफर में एक बहुत अहम पड़ाव रहा है राजशाही से लोकतंत्र की ओर प्रस्थान। मानव इतिहास में ये कितना बड़ा और क्रांतिकारी कदम रहा है, इसका अंदाज लगाना बहुत मुश्किल नहीं है, क्योंकि उस समय का इतिहास दर्ज है। ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में माने जाने वाले राजा और उसकी प्रजा के रूप में अधिकारविहीन व्यक्ति वाले समाज का ठीक उलट है लोकतंत्र।

बहुत पुरानी होने के बावजूद लोकतंत्र की सबसे सही व्याख्या यही है कि यह जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए तंत्र या सिस्टम है। व्यवहार में इसे उतारने के लिए मूल समस्या यही है कि विविधता से भरे, तमाम पहचानों या आईडेन्टिटीज वाले समाज में सिस्टम बनाने की जिम्मेदारियां कैसे बांटी जाएं कि लोकतंत्र की मूल भावना का निर्वाह हो सके। और, ये याद रखना जरूरी है कि लोकतंत्र के आदर्श रूप में हर एक व्यक्ति पूर्ण और समान अधिकार रखता है, बावजूद इसके कि वह तरह-तरह की सामूहिक या कलेक्टिव पहचान भी रखता है। इस उद्देश्य के लिए देश या राष्ट्र अपने संविधान और कानून बनाते हैं।

ये सभी बातें आम जानकारी में हैं। इसमें कुछ नया नहीं है। लेकिन बिल्कुल स्पष्ट होने के बावजूद जो बात आमतौर पर बिल्कुल भुला दी जाती है, वह यह कि लोकतंत्र में जनता पर ही सबसे भारी जिम्मेदारियां भी हैं। अगर ये व्यवस्था जनता के लिए जनता द्वारा है, तो जनता की ही यह जिम्मेदारी है कि वह शासन-प्रशासन और देश के बाकी सभी इदारों की जानकारी रखे और उन पर पैनी नजर भी रखे। अगर ऐसा नहीं हो पाता, तो समझिए कि हमारा लोकतंत्र अधूरा और कमजोर है।

जनता सामान्यतः यह जिम्मेदारी पूरी कर सके, इसके लिए जरूरी है कि देश और संवैधानिक प्रक्रियाओं के बारे में जनता की जानकारी, शिक्षा, आलोचनात्मक दृष्टि और उसके विधि विधान सम्मत अधिकारों को मजबूत किया जाए और अधिकार चेतना का विस्तार हो। साथ ही, ऐसे वातावरण की मौजूदगी भी जरूरी है जिसमें जनता का हर व्यक्ति अपनी बात, अपनी चिंताएं निडर हो कर बता सके।

इस काम के लिए सबसे जरूरी है ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो वैज्ञानिक दृष्टि और निष्पक्ष आलोचनात्मक शऊर पैदा करती हो। शिक्षा विद्यार्थियों में निष्पक्षता, उदारता और साहसिक आलोचनात्मक दृष्टि पैदा करे, यह जिस तरह लोकतंत्र के लिए जरूरी होता है, राजशाही के लिए नहीं। बल्कि यूं कहें कि जनमानस में ऐसी दृष्टि का पनपना राजशाही के लिए खतरनाक है। लेकिन चूंकि लोकतंत्र में आम इंसान ही इसका प्रहरी या रखवाला होता है। यहां शिक्षा का सवाल देश की जीवनरेखा का सवाल बन जाता है।

ये अफसोस की बात है कि शिक्षा व्यवस्था में, तमाम शिक्षाविदों की इस तरह की राय होने के बावजूद इस पर मुकम्मल काम नहीं किया गया। कुल मिला कर दकियानूसी व्यवस्था ही रही, हालांकि पाठ्यक्रमों में कुछ उदारतावादी और आलोचनात्मक टुकड़े जोड़े जाते रहे। यह सामंती चेतना को खत्म करने के लिए काफी नहीं था। इसलिए शिक्षा के लगातार होने वाले विस्तार, वंचितों की शिक्षा तक बढ़ती पहुंच और उदार राजनीति के बावजूद जिस तेजी से और जिस गहराई तक लोकतांत्रिक चेतना फैलनी चाहिए थी, नहीं फैल पाई।

> लोकतंत्र में जनता पर ही सबसे भारी जिम्मेदारियां भी हैं। जनता की ही जिम्मेदारी है कि वह शासन-प्रशासन और देश के बाकी सभी इदारों पर पैनी नजर रखे। अगर ऐसा नहीं हो पाता, तो समझिए कि हमारा लोकतंत्र अधूरा और कमजोर है

आज से 10-11 साल पहले तक स्थिति यह रही कि इस कमी को पूरा करने की मांग उठती रही और सत्ता के केन्द्र इस कमी को दूर करने के वायदे करते रहे। सिर्फ वायदे ही नहीं, कुछ कारगर करते भी रहे। लेकिन पिछले 10-11 साल से सत्ता इस तरह की मांग और कोशिशों को दुशमनी की निगाह से देखने लगी। शिक्षा का सरकारी फलसफा लोकतांत्रिक फलसफे के एकदम उलट हो गया। लगता है कि शिक्षा का अर्थ ही पलट दिया गया। आधुनिक उदारतावादी और बहुलतावादी दृष्टि की जगह संकरी एकरूपी अवैज्ञानिक दृष्टि लेने लगी। आगे भविष्य की ओर बढ़ने वाली चेतना की जगह पीछे लौटने और अवैज्ञानिक धर्म-आधारित विश्वासों को बंद आंखों से देखने वाली मानसिकता शिक्षा केन्द्रों में पसरने लगी। राष्ट्रीयता की सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों वाली चेतना की जगह संकुचित और दंभ भरा विचार शिक्षा का उद्देश्य बनने लगा। और स्वतंत्र चिंतन पर पहरे-दर-पहरे लगने लगे। पाठ्यक्रमों से न सिर्फ ग़ालिब हटे, टैगोर भी बाहर हुए। सत्ता ने देश की बहुलतावादी संस्कृति के प्रति नफरत भरने के लिए हर तरह के दबाव डाले। देशभक्ति जगाने के नाम पर युद्धों में इस्तेमाल हुए पैटन टैंक विश्वविद्यालयों में रखे जाने लगे। कुलपतियों, प्रधानाचार्यों, शिक्षकों की नियुक्तियों में खुल कर राजनीतिक हस्तक्षेप होने लगा। यहां तक कि विश्वविद्यालयों में 'जीवन की व्यवहारिक शिक्षा' के नाम पर शिक्षकों की एक नई तरह की भर्ती शुरू हो गई जिसमें शिक्षकों के लिए किसी भी तरह की डिग्री गैरजरूरी मानी गई। इसके बहाने शिक्षालयों में अनपढ़ और दुराग्रही लोग महत्वपूर्ण और प्रभावी पद पाने लगे। युवा चेतना की खिड़कियां बंद करने का अभियान जारी हो गया। धार्मिक अलगाव और धर्म-आधारित भेदभाव को केन्द्र में रखने वाला एजेंडा शिक्षा संस्थानों में दाखिल हो गया। कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में कक्षा के अतिरिक्त होने वाले कार्यक्रमों में नाजायज दखलंदाजी फलने-फूलने लगी। बहुलतावादी वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक चेतना जगाने वाले कार्यक्रमों को बिना किसी नियम कायदे के रोका गया। दर्जनों उन लोगों के लेक्चर जोर जबरदस्ती से, और बहुत बार बदतमीजी से, रोक दिए गए जो देश के संवैधानिक मूल्यों के पैरोकार रहे हैं और 'रूल ऑफ लॉ' में विश्वास करते हैं। धार्मिक सद्भावना का संदेश देने वाले कार्यक्रमों को कराने वाले कितने ही प्रिंसिपल्स और शिक्षकों को तरह-तरह से सताया गया। कुछ को बेइज्जत किया गया। कुछ को सजा मिली और कुछ को नौकरी से निकाल दिया गया। बहुत से कई सालों से मुकदमों में उलझे हैं।

उन यूनिवर्सिटियों और कॉलेजों की संख्या कम नहीं है जहां बहुसंख्य धर्म के शुद्ध धार्मिक अनुष्ठान प्रशासन की पूरी भागीदारी से हो रहे हैं। सत्यनारायन की कथा, हनुमान का भंडारा आदि।

आज हमारे देश की त्रासदी यह है कि ज्ञान के केन्द्रों में ज्ञान-अज्ञान से पराजित होने के कगार पर खड़ा है। विश्वविद्यालय वैश्विक दृष्टि खो रहे हैं। प्रकाश स्तंभ के रूप में पहचाने जाने वाले संस्थान धुआं छोड़ने को मजबूर हैं।

देश निर्णायक दौर में है। अगर बहुलता और उदारता के मूल्य शिक्षा संस्थानों में जिंदा न रह पाए तो लोकतंत्र भी जिंदा न रह पाएगा। ■

रूपरेखा वर्मा सामाजिक कार्यकर्ता, लेखक और लखनऊ विश्वविद्यालय की पूर्व कुलपति हैं।

विरोध की वह विरासत जो आगे न बढ़ सकी

इतिहास के पन्ने अवध से: भुला दी गई 1857 से 58 साल पहले नवाब वजीर अली की वह 'बगावत'!

कृष्ण प्रताप सिंह

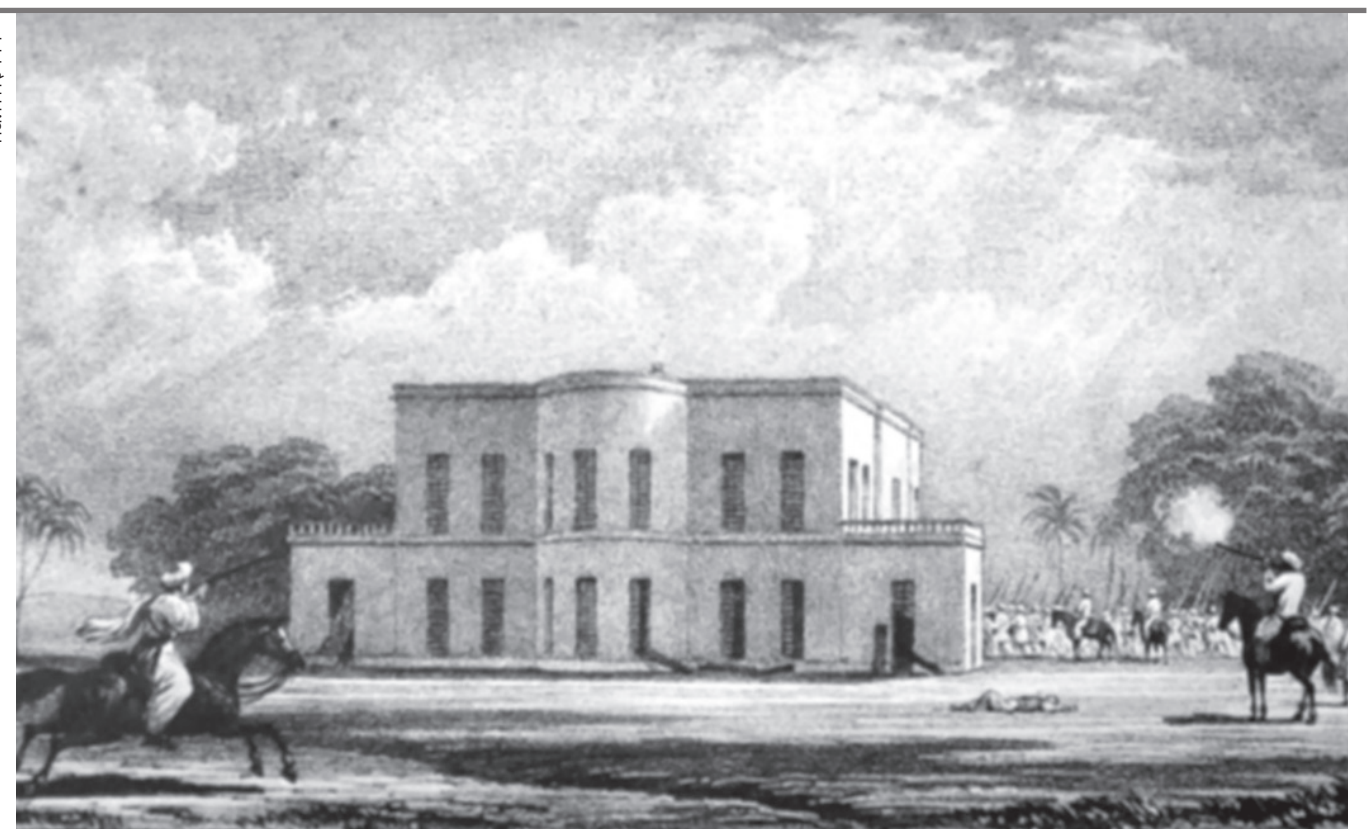

फोटो: विकी इमेजेज

विद्रोह एक पेंटिंग में अंग्रेज सैनिक सैमुअल डेविस के घर हमला करते नवाब वजीर अली खान के समर्थकों को इस तरह दिखाया गया है।

'ये जब्र भी देखा है तारीख की नजरों ने, लमहों ने खता की थी सदियों ने सजा पाई।' जब भी हुकूमतें कोई ऐसा कदम उठाती हैं, जिनसे अगली कई पीढ़ियों के त्रस्त होने का अंदेशा हो, हम उनकी खबर लेने के लिए मशहूर शायर मुजफ्फर रज्मी का यह शेर उद्धृत किए बिना नहीं रह पाते।

इस शेर की मूल भावना पर जाएं तो लगता है कि अंग्रेजों ने 1798 में 21 जनवरी को अवध के पांचवें नवाब वजीर अली खान को सत्ता संभालने के चौथे महीने में ही धोखेबाजी का इल्जाम लगाकर अपदस्थ कर दिया, तो जाने अंजाने इसी शेर को 'सार्थक' कर रहे थे। हालांकि उस वक्त तक यह रचा ही नहीं गया था।

दरअसल, वजीर अली को उनके पिता नवाब आसफउद्दौला का असल के बजाय दत्तक पुत्र करार देकर उनके चाचा सआदत अली की मिलीभगत से दी गई जबरन बेदखली की इस सजा को उनके दादा नवाब शुजाउद्दौला द्वारा की गई एक खता का परिणाम बताया जाता है।

कहा जाता है कि न तीसरे नवाब शुजाउद्दौला 22 अक्तूबर 1764 को बक्सर की ऐतिहासिक लड़ाई में मिली शिकस्त की जाई मजबूरियों के तहत 1773 में अवध दरबार में अंग्रेज रेजीडेंट की नियुक्ति और ईस्ट इंडिया कंपनी के समरनीतिक नियंत्रण का ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रस्ताव स्वीकारने की खता करते, न अंग्रेज उनकी सत्ता का अतिक्रमण कर वास्तविक शासक होने की ओर अग्रसर हो पाते।

दादा शुजाउद्दौला की यह खता पोते वजीर अली पर इतनी भारी पड़ी कि उन्हें कुल मिलाकर सत्रह साल अंग्रेजों की कैद में गुजारने पड़े।

उनकी त्रासदी की इंतिहा यह थी कि कैद में ही उनका देहांत हुआ तो बेरहम ईस्ट इंडिया कंपनी ने उनके अंतिम संस्कार पर सत्तर रुपये भी खर्च नहीं किए, जबकि उनके पिता नवाब आसफउद्दौला ने अप्रैल, 1794 में उनकी शादी के जश्न पर तीस लाख रुपये लुटा डाले थे।

लेकिन वजीर अली की बदनसीबी इतनी ही नहीं थी।

वह इस बात से बहुत बढ़ जाती है कि 1956 में नवाब वाजिद अली शाह को अपदस्थ व निर्वासित किए जाने और 1857 में बागियों द्वारा आखिरी नवाब बिरजिस कदर को गद्दी पर बैठा कर लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम से 58 साल पहले अंग्रेजों से दो-दो हाथ करने के बावजूद इतिहास ने वजीर अली की स्मृतियों के साथ न्याय नहीं किया।

इतिहास के जानकार बताते हैं कि वजीर अली को अवध की सत्ता में अंग्रेजों का अनुचित हस्तक्षेप सख्त नापसंद था। इसीलिए सोलह साल की उम्र में नवाबी हाथ आते ही उन्होंने अपने अंग्रेजपरस्त वजीरों का दर्जा घटाना और स्वायत्तता की ओर बढ़ना शुरू कर दिया था। इतना ही नहीं, गवर्नर जनरल जॉन शोर लखनऊ आए तो उन्होंने उन्हें भी ज्यादा भाव नहीं दिया था।

इससे बुरी तरह खफा अंग्रेज उनके विरुद्ध साजिशें रचने पर उतरे और उन्होंने चाचा सआदत अली से मिलकर उनको गद्दी से उतारने की कवायद शुरू की तो उन्होंने बेचारगी में, बिना किसी बड़े प्रतिरोध के, डेढ़ लाख रुपये सालाना पेंशन और अवध की सुदूर दक्षिणी सीमा पर स्थित बनारस के रामनगर में नजरबंदी 'स्वीकार' कर ली।

फिर भी, न उनकी जगह गद्दीनशीन हुए उसके चाचा सआदत अली खान को चैन था और न उनकी संरक्षक ईस्ट इंडिया कंपनी को ही। वजीर अली द्वारा पलटवार के अंदेशे परेशान करने लगे तो दोनों ने मिलकर तय किया कि उनको बनारस से कोलकाता भेज दिया जाए- कंपनी के मुख्यालय।

> वजीर अली की बदनसीबी इस बात से भी बढ़ जाती है कि 1956 में नवाब वाजिद अली शाह को अपदस्थ किए जाने और 1857 में बागियों द्वारा आखिरी नवाब बिरजिस कदर को गद्दी पर बैठा कर लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम से 58 साल पहले अंग्रेजों से दो-दो हाथ करने के बावजूद इतिहास ने उनकी स्मृतियों के साथ न्याय नहीं किया

इसको लेकर प्रतिहिंसा जागी तो 'शातिर' वजीर अली ने बनारस स्थित अंग्रेज कमांडर जार्ज फ्रेडरिक चेरी को संदेश भिजवाया कि वे उनसे मिलकर प्रतिवाद करना चाहते हैं। चेरी राजी हो गया तो 14 जनवरी 1799 को गुपचुप योजना के तहत अपने सिपहसालारों- इज्जत अली व वारिस अली के साथ उसके 'मिंट हाउस' जा धमके, जहां साथ गए लश्कर ने बिना कोई पल गंवाए कमांडर कैंप को घेरकर न सिर्फ कमांडर चेरी बल्कि कैप्टन कानवे, रोबर्ट ग्राहम, कैप्टन ग्रेग इवांस व सात अंग्रेज सिपाहियों को भी मार डाला।

इस लश्कर का अगला निशाना नदेसर स्थित मजिस्ट्रेट एम. डेविस का घर बना और वहां भी उसने कई संतरियों को मौत के घाट पहुंचा दिया। लेकिन बाद में मजिस्ट्रेट को बचाने आई अंग्रेजों की फौज लाशें बिछाने लगी तो उसके पांव उखड़ गए। अंततः 21 जनवरी 1799 को इस लश्कर ने 'कैदी' वजीर अली को लेकर भाग निकलने में ही अपना भला समझा।

लश्कर जैसे-तैसे राजस्थान के बुटवल पहुंचा तो वजीर अली को जयपुर के राजा के यहां शरण मिल गई। लेकिन बाद में अंग्रेज उन्हें इस शर्त पर कब्जे में लेने में सफल रहे कि न फांसी देंगे, न बेडियों में जकड़ेंगे। शर्त के मुताबिक उन्होंने उनको कोलकाता की फोर्ट विलियम जेल भेज दिया। 15 मई 1817 को वहीं उनकी मौत हो गई तो उनको पश्चिम बंगाल के कैसिया बागान कब्रिस्तान में दफनाया गया।

इधर वाराणसी में मकबूल आलम रोड स्थित ईसाइयों के कब्रिस्तान में मारे गए अंग्रेज कमांडर चेरी व उसके साथी कैप्टनों की याद में निर्मित स्मारक पर वजीर अली का नाम आज भी उनके कातिल के रूप में दर्ज है।

वजीर अली का इससे भी बड़ा दुर्भाग्य यह कि उनकी बेदखली के बाद सत्तासीन हुए अवध के किसी भी नवाब ने अंग्रेज विरोध की उनकी विरासत को कतई आगे नहीं बढ़ाया। उनकी जगह नवाब बने उनके चाचा सआदत अली को तो वैसे भी उस विरासत से परहेज रखना था, लेकिन 1814 में 12 जुलाई को गाजीउद्दीन हैदर सातवें नवाब बने तो अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाने के बजाय उनकी गोद में बैठकर तरह-तरह के खेल खेलने लगे। उनसे मिलीभगत की मार्फत वे खुद को दिल्ली-दरबार से आजाद घोषित कर नवाब के बजाय बादशाह भी बन बैठे। इस बात की चिंता किए बिना कि उनके इस कृत्य की सबसे जबरदस्त आलोचक उनके हरम की 'खासमहल' ही थीं, जो बाद में 'बादशाह बेगम' कही जाने लगीं।

बादशाह बेगम बेहद महत्वाकांक्षी थीं और राजकाज में जहांगीर की नूरजहां जैसी भूमिका निभाना चाहती थीं। लेकिन इतिहास ने उन्हें ऐसा करने की इजाजत नहीं दी तो इसका एक बड़ा कारण गाजीउद्दीन से उनकी प्रायः बनी रहने वाली अनबन भी थी। अलबत्ता, 7 जुलाई 1837 को गाजीउद्दीन हैदर के पुत्र (जो उनके बाद दूसरे बादशाह बने थे) नसीरुद्दीन हैदर की मृत्यु हुई तो विधवा बादशाह बेगम ने अपने पौत्र मुन्नाजान को सत्तारूढ़ कराने की जी तोड़ कोशिशें कर एक और सत्ता संघर्ष को जन्म दे डाला। यह और बात है कि वे अपने इरादे में सफल नहीं हुईं। अंग्रेजों ने दादी-पोते दोनों को नजरबंद कर चुनार के किले में भेज दिया और उनकी एक नहीं चलने दी। उन दोनों को अपना शेष जीवन उस किले में ही काटना पड़ा।

इस सत्ता संघर्ष की जड़ में बादशाह नसीरुद्दीन हैदर का इस अर्थ में लावारिस होना था कि वे मलिका-ए-जमानी उर्फ बेगम शाहजाद महल के गर्भ से पैदा हुए अपने उत्तराधिकारी कैवां जाह को यह कहकर उत्तराधिकार से वंचित कर गए थे कि वे उनके बेटे नहीं हैं। इसलिए उनके दुनिया से जाते ही उनकी सौतेली मां बादशाह बेगम ने अपने प्रिय पौत्र मुन्ना जान की ताजपोशी के प्रयत्न शुरू कर दिए। लेकिन अंग्रेजों ने उन दोनों को कैद करवाकर बादशाह के सौतेले चाचा मुहम्मद अली शाह (मूल नाम मिर्जा नसीरुद्दौला) को गद्दी पर बैठा दिया।

फिर तो अंग्रेजों के अहसान से दबे मुहम्मद अली ने उनसे यह करार करने में भी देर नहीं की कि उन्हें गवर्नर जनरल के सारे संधि प्रस्ताव मंजूर होंगे।

अनंतर, 11 सितंबर 1837 की नौ सूत्री संधि के अनुसार अवध की सेना के संचालन के लिए सोलह लाख रुपये सालाना के भुगतान पर अंग्रेज अफसरों की नियुक्ति अनिवार्य हो गई, जिसका यह संकेत बिलकुल साफ था कि अब वास्तविक सत्ता बादशाह के नहीं, अंग्रेजों के पास है। ■

भारत-पाक संघर्ष के आईने में मोदी के लिए सीख

कर्नल सोफिया कुरैशी जैसे लोगों ने धर्मनिरपेक्षता के बारे में जो कहा, वह राजनीतिक प्रतिष्ठान द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं के विपरीत है

अपूर्वानंद

मैं यह साफ करना चाहती हूं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और इसकी सेना संवैधानिक मूल्यों का एक प्रतिबिंब है। भारतीय सैन्य प्रवक्ता कर्नल सोफिया कुरैशी के ये शब्द युद्ध के नगाड़े बंद होने के बाद भी लंबे समय तक गूंजते रहने वाले हैं। ये शब्द भारत-पाकिस्तान संघर्ष के दौरान हमारे ऊपर बरसे अनगिनत शब्दों में सबसे महत्वपूर्ण हैं।

जल्द ही भाजपा नेता अपने आक्रामक, हिंसक और सांप्रदायिक प्रचार में उन्हें डुबोने की कोशिश करेंगे, लेकिन हमें उन्हें गुमनामी में नहीं जाने देना चाहिए। ये शब्द साबित करते हैं कि भारत अपने प्रतिद्वंद्वी पाकिस्तान पर अपनी श्रेष्ठता केवल एक तरह से स्थापित कर सकता हैः वह है भारत का एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होना। अब जब युद्ध टल गया है, तो सवाल है कि कौन जीता और कौन हारा? दोनों देशों के नेता अपनी जनता को यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि जीत उनकी हुई। चूंकि जनता ने उन्हें बिना शर्त समर्थन दिया था, इसलिए उन्हें अपने नेताओं के दावों को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा। हालांकि, तथ्य उन्हें शर्मिंदगी में डालने वाले हैं। हम इसे नजरअंदाज नहीं कर सकते कि इस संघर्ष में भाजपा और उसके पितृ संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) को विचारधारा के मामले में स्पष्ट रूप से हार का सामना करना पड़ा। राष्ट्रवाद को लेकर उनका विचार हार गया। भारत पाकिस्तान से बेहतर है, इसलिए नहीं कि वह व्यावहारिक रूप से हिन्दू राष्ट्र बन गया है, बल्कि इसलिए कि भारत का संवैधानिक विचार एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का है।

एक युद्ध हथियारों से लड़ा जाता है और दूसरा भाषा से लड़ा जाता है - भाषा विचारों की अभिव्यक्ति है। जब दो देश आपस में लड़ते हैं, तो वे इसे विचारों या आदर्शों के युद्ध में बदलना चाहते हैं। सवाल यह उठता है कि कौन सा देश धर्म का प्रतिनिधित्व करता है और कौन सा अधर्म का। तो, पहले जानना होगा कि आधुनिक समय में धर्म क्या है और अधर्म क्या है? पिछले दस दिनों में भाषा और विचारों का युद्ध भी लड़ा जा रहा था। इस दौरान भारत की सेना बोल रही थी और राजनीतिक प्रतिष्ठान ने चुप रहना बेहतर समझा।

लेकिन विदेश सचिव विक्रम मिस्री और सैन्य प्रवक्ता कुरैशी और व्योमिका सिंह ने जिस भाषा का इस्तेमाल किया, वह 22 अप्रैल से पहले और बाद में भारत के राजनीतिक प्रतिष्ठान के प्रमुखों द्वारा इस्तेमाल की जा रही भाषा से बिल्कुल अलग बल्कि इसके उलट थी। झड़प के तीसरे दिन इस सवाल का जवाब देते हुए कि भारतीय सेना ने मस्जिदों को निशाना बनाया, कुरैशी ने कहा कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। उन्होंने मस्जिदों को निशाना बनाने के भारत पर लगे आरोप का जवाब दिया। वह यह कहना चाह रही थीं कि भारत किसी भी धार्मिक प्रतीक को निशाना नहीं बना सकता, वह किसी भी धर्म का अपमान नहीं कर सकता।

यह वाक्य सिर्फ पाकिस्तान के लिए नहीं था। इसे प्रधानमंत्री और उनकी पार्टी के बाकी नेताओं को भी सुनना चाहिए। सिर्फ उन्हें ही क्यों, उन्हें चुनने वाले उनके सभी समर्थकों को भी इस पर गौर करना चाहिए क्योंकि उन्होंने इन नेताओं को तो इस उम्मीद से चुना था कि वे देश का धर्मनिरपेक्ष चरित्र बदलकर इसे हिन्दू राष्ट्र बना देंगे।

गुंजायमान भारतीय सैन्य प्रवक्ता कर्नल सोफिया कुरैशी ने जोरदार तरीके से कहा कि भारत धर्मनिरपेक्ष देश है।

2019 के चुनावों में पार्टी की जीत के बाद भाजपा कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए नरेन्द्र मोदी ने दावा किया था कि 2014 के बाद धर्मनिरपेक्षता शब्द खत्म हो गया है। उन्होंने इस बात के लिए अपनी पीठ थपथपाई कि 2019 के चुनावों में कोई भी दल धर्मनिरपेक्षता का मुखौटा पहनकर लोगों को गुमराह नहीं कर पाया। मोदी के बाद भाजपा के दूसरे सबसे लोकप्रिय नेता योगी आदित्यनाथ ने 2017 में कहा था कि 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द सबसे बड़ा झूठ है। 2023 में संसद में सरकार द्वारा वितरित संविधान की प्रतियों से समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता शब्द हटा दिए गए। आदालत के जरिये इन्हें संविधान से हटाने की कोशिशें तो कई बार हुईं।

खुद उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ ने कई बार कहा है कि संविधान के मूल ढांचे का सिद्धांत पवित्र नहीं है और इसे बदला जा सकता है। जबकि सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार माना है कि संसद जो चाहे कानून बनाए, लेकिन वह मूल ढांचे से छेड़छाड़ नहीं कर सकती। धर्मनिरपेक्षता इस मूल ढांचे का एक अनिवार्य तत्व है। धनखड़ इसे हटाना चाहते हैं।

> गुजरात में मोदी हिन्दुओं को यह कहकर डराते रहे कि अगर कांग्रेस सत्ता में आई तो अहमद पटेल मुख्यमंत्री बनेंगे। ऐसे ही असम में यह कहकर डराने की कोशिश हुई कि अगर भाजपा को बहुमत नहीं मिला तो बदरुद्दीन अजमल मुख्यमंत्री बन जाएंगे। क्या उन्हें मुख्यमंत्री बनने का हक नहीं?

आरएसएस के गुरुओं को सबसे ज्यादा जिस अवधारणा से नफरत है, वह है धर्मनिरपेक्षता। भाजपा और आरएसएस सबसे ज्यादा नेहरू से नफरत करते हैं, क्योंकि उन्हें भारत को धर्मनिरपेक्ष गणराज्य बनाने का जिम्मेदार माना जाता है। आपको याद होगा कि जब उद्धव ठाकरे ने भाजपा से नाता तोड़कर कांग्रेस में शामिल होने का फैसला किया था, तो भाजपा नेताओं ने यह कहकर उन पर तंज कसा था कि वे धर्मनिरपेक्ष हो गए हैं। महाराष्ट्र के तत्कालीन राज्यपाल ने भी व्यंग्यात्मक ढंग से कहा था कि ठाकरे धर्मनिरपेक्ष बनना चाहते हैं। भाजपा समर्थक धर्मनिरपेक्ष शब्द का इस्तेमाल अपमानजनक शब्द के रूप में करते रहे हैं।

2014 के बाद भाजपा समर्थकों ने धर्मनिरपेक्ष शब्द को विकृत करना शुरू कर दिया और इसमें विश्वास करने वाले सभी लोगों को 'सिकुलर' कहना शुरू कर दिया, जिसका अर्थ था कि सभी धर्मनिरपेक्ष लोग 'सिक' या बीमार हैं, या यह अवधारणा अपने आप में एक बीमारी है। एक समय था जब भाजपा के लोग दावा करते थे कि वे ही असली धर्मनिरपेक्ष हैं। लालकृष्ण आडवाणी ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की वकालत करने वालों पर हमला करने के लिए छद्म धर्मनिरपेक्ष शब्द गढ़ा। समय-समय पर धर्मनिरपेक्षता पर हमला किया जाता रहा है या उसे विकृत करने की कोशिश की जाती रही है। मोदी ने कहा कि चूंकि उनकी सरकारी योजनाओं से सभी को लाभ मिलता है, इसलिए वे धर्मनिरपेक्ष हैं। यह कहना धर्मनिरपेक्ष शब्द की आत्मा और इसकी अवधारणा की हत्या है। धर्मनिरपेक्षता दरअसल राजनीतिक अधिकारों की समानता से जुड़ी है। हर धर्म और संप्रदाय के लोगों को, चाहे उनकी संख्या कितनी भी हो, समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। धर्मनिरपेक्षता का एक अर्थ यह भी है कि हर धर्म के लोग एक ही तरह से राजनीति में भाग ले सकें।

राजनीतिक भागीदारी का मतलब सिर्फ सभी समुदायों के लिए वोटिंग अधिकार नहीं। यह तभी सार्थक हो सकता है जब हर धर्म या समुदाय के लोगों को यकीन हो कि वे भी देश के प्रतिनिधि हो सकते हैं। भाजपा के प्रमुख विचारक दीनदयाल उपाध्याय और उनसे पहले एम.एस. गोलवलकर ऐसा भारत चाहते थे जिसमें मुसलमानों और ईसाइयों को राजनीतिक अधिकार न हों। गुजरात में चुनाव प्रचार के दौरान मोदी ने यह कहकर हिन्दुओं को डराने की कोशिश की कि अगर कांग्रेस सत्ता में आई तो अहमद पटेल मुख्यमंत्री बनेंगे। किसी ने, यहां तक कि कांग्रेस ने भी नहीं पूछा कि पटेल को गुजरात का मुख्यमंत्री बनने का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए? इसी तरह असम में हिन्दुओं को यह कहकर डराने की कोशिश की गई कि अगर भाजपा को बहुमत नहीं मिला तो बदरुद्दीन अजमल मुख्यमंत्री बन जाएंगे। क्या उन्हें मुसलमान होने के नाते असम का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं? मोदी बार-बार राहुल गांधी को "शहजादा" कहकर उनका मजाक उड़ाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे मुलायम सिंह यादव को "मौलाना मुलायम" कहकर। हमें पता है, इसका क्या मतलब है।

2002 में जब मुख्य चुनाव आयुक्त जे.एम. लिंगदोह ने सांप्रदायिक हिंसा के मद्देनजर गुजरात में चुनाव की तारीखें बदलने का फैसला किया, तो तत्कालीन मुख्यमंत्री मोदी ने उनके पूरे नाम का इस्तेमाल करते हुए उन्हें 'जेम्स माइकल लिंगदोह' कहकर उनकी ईसाईयत को उजागर करने की कोशिश की - मानो लिंगदोह ने चुनाव इसलिए टाले कि वह ईसाई थे! सोनिया गांधी पर भी उनकी ईसाईयत के कारण हमला किया गया। 11 सालों से स्कूली किताबों और पाठ्यक्रमों से मुस्लिम छाप वाली हर चीज को हटाने का लगातार अभियान चल रहा है। देश भर में शहरों, कस्बों और सड़कों के नाम बदलकर उनका हिन्दूकरण किया जा रहा है।

धर्मनिरपेक्षता को विदेशी अवधारणा बताकर उसे त्यागने का वैचारिक अभियान दशकों से चल रहा है। लेकिन आज वही धर्मनिरपेक्षता भारत के लिए वैचारिक ढाल बन गई। मोदी की भाषा को आदर्श मानने वाले सवाल कर सकते हैं कि क्या सत्ता ने अपने कुरूप, घिनौने बहुसंख्यकवादी चेहरे को छिपाने के लिए मुखौटा पहन लिया है? ■

अपूर्वानंद दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाते हैं। साभारः thewire.in/

क्या हम अपनाएंगे कोई राष्ट्रीय रक्षा नीति?

शायद हाल की घटनाएं सरकार को इसके लिए प्रोत्साहित करेंगी जिसके आधार पर हम आतंकवादी हमलों के दौरान कार्रवाई कर सकें

आकार पटेल

भारत की रक्षा योजना समिति की स्थापना 19 अप्रैल 2018 को की गई थी। राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोवाल को इसका अध्यक्ष बनाया गया था और इसमें विदेश, वित्त और रक्षा सचिवों के अलावा चीफ ऑफ डिफेंस स्टॉफ, तीनों सेना प्रमुखों को शामिल किया गया था।

इस समिति के सामने राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा प्राथमिकताओं, विदेश नीति की अनिवार्यताओं, परिचालन निर्देशों और संबंधित आवश्यकताओं, प्रासंगिक रणनीतिक और सुरक्षा-संबंधी सिद्धांतों, रक्षा अधिग्रहण और बुनियादी ढांचे के विकास की योजनाओं, राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति, रणनीतिक रक्षा समीक्षा और सिद्धांतों, अंतरराष्ट्रीय रक्षा जुड़ाव रणनीति आदि की देखभाल करने आदि के विशाल काम थे। इस समिति की एक ही बार, 3 मई 2018 को बैठक हुई थी और ऐसा लगता है कि उसके बाद इसकी कोई बैठक ही नहीं हुई।

चूंकि देश के पास कोई राष्ट्रीय सुरक्षा सिद्धांत नहीं था, इसलिए लगता है कि भारत ने संभवतः ऐसे सिद्धांत पर ही भरोसा किया है जिसे अनौपचारिक रूप से डोवाल सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। भले ही लिखित तौर पर यह सिद्धांत सामने नहीं आया हो, पर कई वीडियो इस बारे में उपलब्ध हैं। फरवरी 2014 में राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार नियुक्त होने से कुछ सप्ताह पहले, डोवाल ने तंजावुर में शास्त्र विश्वविद्यालय में भाषण दिया था। अपने भाषण के दौरान, उन्होंने निम्नलिखित बिंदु रखे थेः

आतंकवाद भारत के लिए एक रणनीतिक खतरा है क्योंकि यह एक अंतरराष्ट्रीय परिघटना है; और चूंकि पाकिस्तान ने इसे पोषित किया और बढ़ावा दिया; और क्योंकि भारत में बड़ी मुस्लिम आबादी है। लेकिन आतंकवाद से इसलिए नहीं लड़ा जा सकता, क्योंकि यह एक विचार है, एक शब्द है। केवल आतंकवादियों से लड़ा जा सकता है (या उनकी क्षमता को 'कम' किया जा सकता था), क्योंकि केवल एक ठोस दुश्मन को ही हराया जा सकता था, किसी शब्द को नहीं।

इस तरह भारत को अपने सामने मौजूद खतरे को नाम देना पड़ा, और इसका नाम पाकिस्तान है। दुश्मन की पहचान करने के बाद डोवाल ने सवाल पूछा था, 'आप पाकिस्तान से कैसे निपटेंगे?' और फिर विस्तार से इस बारे में बताया था। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति की समस्या दरअसल पाकिस्तान का अर्ध-परंपरागत युद्ध शुरू करने (सीमा पार आतंकवाद और उग्रवाद फैलाने) की क्षमता है। उसके पास मौजूद परमाणु हथियारों के खतरे के कारण भारत इस पर अपनी सैन्य प्रतिक्रिया को बहुत अधिक आगे नहीं ले जा सकता है।

डोवाल ने कहा थाः 'मैंने उनके (पाकिस्तान के) पास परमाणु हथियार होने, सामरिक हथियार प्रणाली, मिसाइल, चीन के साथ सामरिक साझेदारी होने के बारे में बात की। हम इससे कैसे निपट सकते हैं?' यह आसान है। उन्होंने कहाः 'आप जानते हैं कि हम दुश्मन से तीन तरीकों से भिड़ते हैं। एक है डिफेंस मोड। चौकीदार और चपरासी। अगर कोई यहां आता है, तो हम उसे (घुसने से) रोक देंगे। एक है डिफेंसिव-ऑफेंस। खुद को बचाने के लिए हम उस जगह पर जाएंगे जहां से हमला हो रहा है। तीसरा है आक्रामक मोड जहां आप सीधे आगे बढ़ते हैं। आक्रामक मोड में परमाणु सीमा एक कठिनाई है, पर डिफेंसिव-ऑफेंस में नहीं।' उन्होंने कहा था कि फिलहाल मनमोहन सिंह की सरकार के तहत हम केवल रक्षात्मक मोड में काम करते हैं।

> डोवाल सिद्धांत ने भारत के लिए रणनीतिक खतरा पाकिस्तान से आतंकवाद को माना और इसका जवाब दुश्मन के साथ वैसा ही व्यवहार करना था जैसा तुम्हारे साथ किया जा रहा है। यह स्पष्ट नहीं है कि इस अलिखित सिद्धांत को सरकार ने अपनाया या नहीं

एक तरह से वह यह सुझाव दे रहे थे कि भारत को पारंपरिक युद्ध के अलावा अन्य तरीकों से पाकिस्तान पर हमला करना चाहिए। उनके शब्दों मेंः '... पाकिस्तान की कमजोरियों को पहचान कर कदम उठाना। इसमें अर्थव्यवस्था, आंतरिक सुरक्षा या राजनीतिक कुछ भी हो सकता है। दूसरा अंतरराष्ट्रीय अलगाव। मैं विवरण में नहीं जा रहा हूं। लेकिन... आप रक्षात्मक मोड से बाहर आएं।'

उन्होंने कहा कि ऐसा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि आक्रामक मोड का तो रास्ता बंद था, क्योंकि परमाणु सीमा तक बढ़ने पर कोई नियंत्रण नहीं था। इसी तरह, उनके लिए, रक्षात्मक मोड बेकार था। उन्होंने कहा, 'तुम मुझ पर सौ पत्थर फेंकते हो, मैं नब्बे पत्थर फेंकता हूं, पर दस पत्थर फिर भी मुझे चोट पहुंचाते हैं। मैं कभी नहीं जीत सकता। या तो मैं हार जाता हूं या गतिरोध पैदा हो जाता है। तुम अपने समय पर युद्ध शुरू करते हो, तुम जो चाहो पत्थर फेंकते हो, तुम जब चाहो बात करते हो, तुम जब चाहो शांति पाते हो।

रणनीति विदेश मंत्री एस जयशंकर और केन्द्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण के साथ एनएसए अजित डोवाल।

उन्होंने आगे कहा था, 'अगर आप रक्षात्मक-आक्रामक हैं, तो हम देखेंगे कि साम्यावस्था का संतुलन कहां है। पाकिस्तान की कमजोरी भारत की तुलना में कई गुना ज्यादा है। एक बार जब उन्हें पता चलेगा कि भारत ने अपना गियर रक्षात्मक से रक्षात्मक-आक्रामक में बदल दिया है, तो वे हड़बड़ा जाएंगे। आप एक मुंबई कर सकते हैं, आप बलूचिस्तान खो सकते हैं। इसमें कोई परमाणु युद्ध शामिल नहीं है। सैनिकों की कोई मुठभेड़ नहीं है। अगर आप चालें जानते हैं, तो हम चालें आपसे बेहतर जानते हैं।' उन्होंने आगे कहाः 'हमारी एकमात्र कठिनाई यह रही है कि हम रक्षात्मक मोड में रहे हैं। अगर हम रक्षात्मक-आक्रामक मोड में होते, तो हम अपने हताहतों की संख्या को कम कर सकते थे।'

यह डोवाल सिद्धांत था। इसने भारत के लिए रणनीतिक खतरा पाकिस्तान से आतंकवाद को माना और इसका जवाब दुश्मन के साथ वैसा ही व्यवहार करना था जैसा तुम्हारे साथ किया जा रहा है। यह स्पष्ट नहीं है कि इस अलिखित सिद्धांत को सरकार ने अपनाया या नहीं, लेकिन एनएसए के रूप में डोवाल के एक दशक का मतलब है कि इसका एक मजबूत प्रभाव रहा होगा।

2020 में भारत को दूसरे मोर्चे पर भी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इस स्थिति का आकलन करते हुए पूर्व जनरल प्रकाश मेनन ने कहा था कि कई दशकों से भारत की सेना के लिए राजनीतिक मार्गदर्शन पाकिस्तान को तत्काल खतरे के रूप में देखता रहा है। लेकिन अब जब चीन का खतरा दरवाजे पर है, तो इसे बदलना होगा।

सेना द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अपेक्षित राजनीतिक उद्देश्य यूपीए के तहत तैयार किए गए 'रक्षा मंत्री के निर्देश' नामक दस्तावेज में निहित थे। इसमें यह बताया गया था कि संघर्ष की आशंका में सशस्त्र बलों को कितना गोला-बारूद और स्पेयर स्टॉक में रखना चाहिए। जनरल मेनन ने कहा कि यह निर्देश 'सुसंगत राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति के अभाव के कारण अभी भी प्रासंगिक नहीं है। एनएसए की अध्यक्षता वाली रक्षा योजना समिति को दो साल पहले यह कार्य सौंपा गया था। अभी तक कुछ भी सामने नहीं आया है।' यह 2020 की बात है।

पहलगाम के बाद स्थिति फिर से पश्चिमी मोर्चे पर आ गई है। चीन के साथ टकराव को पांच साल हो चुके हैं और रक्षा योजना समिति के गठन को सात साल हो चुके हैं। शायद हाल की घटनाएं सरकार को एक राष्ट्रीय सुरक्षा सिद्धांत लागू करने के लिए प्रोत्साहित करेंगी जिसके आधार पर हम पारंपरिक या आतंकवादी हमलों के दौरान कार्रवाई कर सकें। ■

पारिस्थितिकी विनाश पर जागने का समय

जातीय सफाये से खतरनाक है पारिस्थितिकी की 'हत्या' और जैव विविधता को खत्म करना क्योंकि इससे एक-दो समुदाय नहीं, पूरा ग्रह प्रभावित होता है

अभय शुक्ला

सबसे पहले संदर्भ समझना चाहिए। सब उपाय बेकार रहे हैं। अगर हम अपनी मौजूदा जीवन शैली को जारी रखते हैं, तो इसी सदी में इस ग्रह के विनाश को देख सकते हैं। पेरिस समझौते की 1.5 डिग्री सेल्सियस तापमान वृद्धि की लाल रेखा लांघी जा चुकी है, सीओ2 का स्तर औद्योगिक-पूर्व के स्तर से 125फीसद ज्यादा होकर 425 पीपीएम के स्तर को छू चुका है और यह जीवित रहने के लिहाज से 450 पीपीएम की सुरक्षित सीमा के करीब है। पिछले तीन साल इतिहास में सबसे गर्म रहे हैं और इस गर्मी में पाकिस्तान और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में तापमान 50 डिग्री सेल्सियस को छू सकता है। सदी के अंत तक हिमालय के ग्लेशियर के गायब हो जाने की आशंका है जिससे दुनिया की एक चौथाई आबादी के लिए अकल्पनीय जल संकट पैदा हो सकता है। हर साल हजारों प्रजातियां विलुप्त हो रही हैं। ग्रह ऐसी परिस्थितियों में लंबे समय तक बचा नहीं रह सकता।

इस संकट का प्रमुख कारण बड़े पैमाने पर हो रही जंगलों की कटाई है। ग्लोबल फॉरेस्ट वॉच के मुताबिक, दुनिया में हर साल एक करोड़ हेक्टेयर वन क्षेत्र काटे जाते हैं, यानी एक लाख वर्ग किलोमीटर या हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रफल का दोगुना। 2001 से 2023 के बीच हमने विकास, खेती और कटाई के कारण 40.8 करोड़ हेक्टेयर वन खो दिए हैं और इसके साथ ही 204 गीगा टन की सीओ2 अवशोषित करने की क्षमता भी खत्म हो गई।

जंगलों की अंधाधुंध कटाई की समस्या सभी देशों में है क्योंकि सरकारों की नजर अल्पकालिक आर्थिक फायदे पर रहती है और बहुराष्ट्रीय कंपनियां बेखौफ प्राकृतिक संसाधनों को लूटती रहती हैं। कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज (कॉप) की बैठकें बेकार हैं। पर्यावरण विनाश के चंद हालिया उदाहरणों पर गौर करें:

खनन और कटाई के कारण अमेजन बेसिन के 30 फीसद जंगल पहले ही खत्म हो चुके हैं। इसके बाद भी इक्वाडोर ने खनन के लिए अमेजन के 30 लाख हेक्टेयर जंगलों की नीलामी की योजना को अंतिम रूप दे दिया।

रूस के 2023 में पूर्वी यूक्रेन में काखोवका बांध पर बमबारी से 18 क्यूबिक किलोमीटर पानी निकला और सैकड़ों वर्ग किलोमीटर प्राकृतिक पर्यावरण और रहवास तबाह हो गए।

इंडोनेशिया दुनिया में सबसे बड़ी वन कटाई परियोजना को लागू करने की प्रक्रिया में है-दुनिया के तीसरे सबसे बड़े वर्षावन के 30,689 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का गन्ना (इथेनॉल और खाद्यान्न के लिए) उगाने का सफाया किया जा रहा है। यह क्षेत्र की जैव विविधता को नष्ट कर देगा।

इंडोनेशिया, मलेशिया और पापुआ न्यू गिनी में पाम ऑयल के बागानों के लिए सैकड़ों हजार हेक्टेयर वनों को काट दिया गया है। विश्व वन्यजीव कोष (डब्लूडब्लूएएफ) का अनुमान है कि पिछले कुछ दशकों में समुद्री जीवन सहित वन्य जीवन की आबादी में 70 फीसद कमी आई है।

खिलवाड़ पर्यावरण प्रदर्शन सूचकांक में निचले पायदान पर रहने वाला भारत वनों की लूटपाट के लिहाज से सबसे कुख्यात देशों में है।

पर्यावरण प्रदर्शन सूचकांक में निचले पायदान पर रहने वाला भारत वनों की लूटपाट के लिहाज से सबसे कुख्यात देशों में है। रिपोर्टों और आंकड़ों में हेराफेरी के बावजूद, संसद में सरकार ने जो खुद माना है, उससे पता चलता है कि 2014 से 2024 के बीच के दस सालों में ही 1.73 लाख हेक्टेयर वन भूमि को गैर-वानिकी गतिविधियों के लिए इस्तेमाल किया गया।

ग्लोबल फॉरेस्ट वॉच के मुताबिक भारत ने 2000 से 2024 के बीच 23.3 लाख हेक्टेयर वन खो दिए; 2022 की वन स्थिति रिपोर्ट के मुताबिक 2015 से 2021 के बीच 31.36 लाख हेक्टेयर घने जंगल 'खुले' या 'झाड़ीदार' श्रेणी में आ गए हैं और सड़क, खनन, जलविद्युत और अन्य परियोजनाओं के लिए 94 लाख पेड़ काटे गए हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र और जैव विविधता पर तमाम परियोजनाओं के रूप में यह हमला लगातार जारी है जैसे- ग्रेट निकोबार टर्मिनल, हैदराबाद में कांचा गाचीबोवली, मुंबई कोस्टल रोड परियोजना के लिए 9,000 मैंग्रोव का नाश, चार धाम राष्ट्रीय राजमार्ग, कांवड़ियों के लिए ऋषिकेश तक एक विशेष सड़क (33,000 पेड़ों की कीमत पर), कर्नाटक के सैंडर्स जंगल की लौह अयस्क खनन परियोजना जिसके कारण 99 हजार पेड़ कटेंगे, राजस्थान के बारां जिले के शाहाबाद जंगलों में पंप स्टोरेज परियोजना जिसके कारण 400 एकड़ से अधिक क्षेत्र के एक लाख से अधिक परिपक्व पेड़ काटे जाएंगे। यह पर्यावरणीय सर्वनाश की कभी खत्म न होने वाली सूची है।

> संकट का प्रमुख कारण जंगलों की कटाई है। दुनिया में हर साल एक करोड़ हेक्टेयर वन क्षेत्र काटे जाते हैं, यानी हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रफल का दोगुना। 2001 से 2023 के बीच हमने 40.8 करोड़ हेक्टेयर वन खो दिए

पर्यावरण नरसंहार और जैव विविधता के विलुप्त होने का यह स्तर एक तरह से नरसंहार से भी बदतर है क्योंकि यह सिर्फ एक या दो समुदायों को नहीं बल्कि पूरे ग्रह को प्रभावित करता है: तापमान या सीओ2 का स्तर और जैव विविधता का नुकसान राजनीतिक, जातीय या राष्ट्रीय सीमाओं को नहीं पहचानता। इसके अलावा ये प्रभाव सिर्फ एक या दो पीढ़ी तक नहीं, बल्कि हजारों सालों तक बने रहते हैं। अब वैज्ञानिक, प्रकृतिवादी, जलवायु कार्यकर्ता और यहां तक कि राजनेता भी समझने लगे हैं कि ऐसी हरकतें पूरी मानवता के खिलाफ अपराध हैं और उन्हें परिभाषित करने के लिए एक नया शब्द गढ़ा गया है - पारिस्थितिकी विनाश।

पारिस्थितिकी विनाश, हत्या या नरसंहार जैसा ही है क्योंकि इसमें भी हत्या शामिल है, लेकिन बड़े पैमाने पर। इसे 'यह समझते हुए गैरकानूनी कृत्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि इनके कारण पर्यावरण को गंभीर, व्यापक और दीर्घकालिक नुकसान होता है'। इसे मानवीय गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राकृतिक पर्यावरण के बड़े क्षेत्रों के विनाश के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। कम से कम तीन देशों - वानुअतु, फिजी और समोआ - ने सितंबर 2024 में प्रस्ताव किया है कि ऐसी गतिविधियों को आईसीसी (अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय) द्वारा अपराध के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

कई देशों में पर्यावरण विनाश के खिलाफ पहले से ही कानून हैं, लेकिन ये अप्रभावी हैं। कारण यह है कि बड़े पैमाने पर पर्यावरण विनाश आमतौर पर देशों की सरकारों द्वारा किया जाता है, (आम लोगों द्वारा नहीं, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से साफ है) और उनकी कोई जवाबदेही नहीं होती। एक देश के ऐसे विनाशकारी फैसले का विनाशकारी असर उसकी सीमाओं से कहीं आगे तक होता है। इसीलिए उन्हें जवाबदेह ठहराने या ऐसे कार्यों से रोकने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय कानून की जरूरत है। यही तर्क बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर भी लागू होता है जो अपने विस्तार, आकार और प्रभाव के कारण ज्यादातर राष्ट्र-विशिष्ट कानूनों से मुक्त होती हैं।

पर्यावरण के विनाश से दुनिया को बचाने में बातचीत, संधियां, सम्मेलन काम नहीं आए हैं। शायद अब समय आ गया है कि उन देशों और नेताओं को दंडित किया जाए जो गैर-जिम्मेदार बने हुए हैं। हम राजनीतिक नेताओं और कॉरपोरेट्स को बिना किसी दूरदर्शिता के और भौतिक लालच से प्रेरित होकर, महात्मा गांधी के शब्दों में, 'टिड्डियों की तर्ज पर दुनिया को नंगा करने' की इजाजत नहीं दे सकते। जैसा कि रोनाल्ड रीगन ने कहा था, 'अगर आप उन्हें रोशनी देखने लायक नहीं बना सकते, तो उन्हें तपिश का एहसास कराएं'। पर्यावरण हत्या को मानवता के खिलाफ सबसे बुरे अपराध के रूप में पहचाना जाना चाहिए क्योंकि यह ग्रह और यहां रहने वाले मानव जाति के अस्तित्व को दांव पर लगाता है। इसे अपराध घोषित करने का समय आ गया है। ■

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं।
यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है।

ADVERTISEMENT RATE CARD
w.e.f. 1 January 2024

NATIONAL HERALD ON SUNDAY संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu
www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1st Jan 2024)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition)	(Mumbai)	Sunday Navjivan (National Edition)
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 10 Lakh	Rs 8 Lakh	Rs 10 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 6 Lakh	Rs 5 Lakh	Rs 6 Lakh
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 4 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 4 Lakh
< Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 1515 per sq. cm		

PAGE PREMIUM	Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings and anniversary
Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000
< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW
@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions
w.e.f. 1 January 2024
National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.

पोलिस कविता / विस्वावा शिम्बोर्स्का

हिटलर की पहली फोटो

अपने चिलबिल से कपड़ों में यह छुटकू भाई कौन है
अरे ! यह छोटा बच्चा अडोल्फ़है,हिटलर खानदान का नन्हा-मुन्ना
क्या यह ले पाएगा क़ानून की सबसे ऊंची डिग्री
या बनेगा विएना के किसी ओपेरा हाउस का टेनर गायक ?

यह बित्ता सा हाथ किसका है ?
किसकी है यह टुन्नी सी नाक,चिया सी आंखें और नन्हें-नन्हें कान?

किसका पेट दूध से भरा है,हमें ज़रा सा भी इल्म नहीं
क्या यह है प्रिंटर,डॉक्टर ,व्यापारी या पादरी ?

आख़िरकार ये टुइयां से उजबक पांव मारे-मारे कहां फिरेंगे ?
फुलवारी जाएंगे,स्कूल जाएंगे,दफ़्तर जाएंगे,शादी करेंगे
शायद उसकी शादी नगर महापौर की बेटी से हो

अनमोल छोटा फ़रिश्ता
मां का दुलरवा सूरज- मीठे गुलगुले सा
एक साल पहले जब वह पैदा हो रहा था
ज़मीन और आसमान में उसके आने के तब तमाम इशारे मिल रहे थे

वसंत की धूप थी,खिड़कियों पर जिरेनियम के फूल खिले थे
अहाते में बज रहा था ऑर्गन ग्राइंडर का संगीत
गुलाबी कागज़ में लिपटा वह ख़ुशबख़्त नसीब था

फिर ज़च्चगी के पहले उसकी मां का भावी सपना
अगर सपने में दिखा फाख़्ता तो ख़ुशख़बरी मिलेगी
और अगर वह पकड़ा गया तो आएगा वह मेहमान
अरसे से हो रहा है जिसका इंतज़ार

धक-धक कुछ सुनाई दे रहा है, अरे! यह चुन्नू-मुन्नू अडोल्फ़का
दिल धड़क रहा है

एक छोटी सी चुसनी,लंगोटी,झुनझुना,बिब
कुलांचे भरता लड़का,ख़ुदा का शुक्र है कि वह लकड़ी पर गिरा और ठीक-ठाक है
अपने ख़ानदान सा दिखता है जैसे टोकरी में बिल्ली का बच्चा हो
हर पारिवारिक अलबम के नन्हें-मुन्नों की तरह

शी- शी- चुप रहिए,कहीं यह बिलखने न लगे,चुप कराने के लिए चीनी है न !
काले कपड़े के नीचे से कैमरा फोटो खींचेगा
विलंगेर अतेलिए,ग्राबेनस्ट्रेस,ब्रौनाऊ
ब्रौनाऊ एक छोटा लेकिन उम्दा क़स्बा
होता है यहां ईमानदारी से कारोबार
रहते हैं दयानातदार पड़ोसी
वहां तिरती रहती है गूंथे आटे का ख़मीर और कपड़ा धोने के साबुन की गंध

कुत्तों का रिरियाकर रोने
या होनी की आहट को कोई नहीं सुनता
इतिहास का एक उस्ताद अपनी कॉलर ढीली करता है
और उबासी की उसांस लेता है
होमवर्क की नोटबुक पर

अंग्रेजी से अनुवाद: विनोद दास
नोट : ब्रौनाऊ : हिटलर का जन्मस्थान

अंधेरे के बीच उजाले भरे क्षितिज की तलाश

इब्राहिम शरीफ की जल्द मृत्यु से अंधेरे के खिलाफ उजाले की लड़ाई लड़ने की उनकी ख्वाहिश पूरी न हो सकी। उन्हें आज फिर से पढ़े जाने की जरूरत है

अरविन्द कुमार

इब्राहीम शरीफ़ अपने उपन्यास लेखन की पृष्ठभूमि के संबंध में लिखते हैं, 'उपन्यास के कथानक की परिकल्पना के अनुसार मुझे एक ऐसे युवक की जरूरत थी जो गरीब हो, परिस्थितियों का मारा हो, आक्रोश से भरा हुआ, पर चुपचाप रहने वाला हो'। उनका पहला उपन्यास 'अंधेरे के साथ' इसी जमीन पर है

इब्राहिम शरीफ सत्तर के दशक के कथाकार थे। मूल रूप से कमलेश्वर के समांतर कहानी आंदोलन से जुड़कर हिन्दी कहानी की दुनिया में दाखिल हुए थे। तब समांतर कहानी आंदोलन में इब्राहिम शरीफ, जितेन्द्र भाटिया, कामतानाथ, मधुकर सिंह, सुदीप, सतीश जमाली जैसे नाम थे। कमलेश्वर की अगुवाई में इसका पहला सम्मेलन जून 1971 में मुंबई में हुआ, जो 'सारिका' को इस आंदोलन का मंच बनाना चाहते थे। बाद में स्वयं प्रकाश, संजीव, मिथिलेश्वर, से. रा. यात्री, श्रवण कुमार जैसे कथाकार इससे जुड़े। समांतर कहानी के पहले हिन्दी में नई कहानी, साठोत्तरी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी जैसे आंदोलन हो चुके थे और उनके माध्यम से कथाकारों का एक बड़ा संसार सामने आ चुका था।

इब्राहिम शरीफ का लेखन सातवें दशक के मध्य से आठवें दशक के मध्य तक का माना जाता है क्योंकि 1975 के बाद उनका कोई संकलन सामने नहीं आया। इस लिहाज से यह अवधि 1965 से 1975 की हो सकती है। इस अवधि में उन्होंने लगभग ढाई दर्जन कहानियां और एक उपन्यास लिखा। उनकी ये कहानियां धर्मयुग, सारिका, कहानी, नई कहानी, पहल, उत्तरार्ध, लहर जैसी पत्रिकाओं में छपीं और वह उस दौर के एक महत्त्वपूर्ण कथाकार माने जाने लगे।

इब्राहिम शरीफ का जन्म नंदलूर, आंध्रप्रदेश जैसे एक गैर हिन्दी पट्टी में 27 दिसंबर 1937 को हुआ था। एक मुस्लिम होते हुए उन्होंने अपनी पढ़ाई के लिए हिन्दी जैसे विषय को चुना तथा 'दक्खिनी हिन्दी के लोकगीत' जैसे कठिन विषय पर अपनी पीएच.डी. पूरी की। पढ़ाई पूरी करने के बाद कालीकट के सर सय्यद अहमद कॉलेज में प्राध्यापक की नौकरी की पर मन नहीं लगा और वहां की व्यवस्था नही भाई तो नौकरी जल्द ही छोड़ दी, हालांकि उनका पहला उपन्यास 'अंधेरे के साथ' की पूरी जमीन यहीं तैयार हुई। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि के बारे में वह स्वयं लिखते हैं कि 'उपन्यास के कथानक की परिकल्पना के अनुसार मुझे एक ऐसे युवक की जरूरत थी जो गरीब हो, परिस्थितियों का मारा हो, आक्रोश के भरा हुआ पर चुपचाप रहने वाला हो। गंगाधरन ऐसी ही था, मेरे उपन्यास के 'मैं' जैसा, गरीब आक्रोशी पर प्रायः चुप रहनेवाला। हमारा काम समुद्र तट पर घूमना और वहां की रेत पर अनावश्यक कुछ-कुछ लिखना होता था।'....यही लिखना बाद में उपन्यास की मूल कथा में एक रूपक बनकर प्रकट हुआ जहां व्यापक कल्पना में ही अपनी नाराजगी और गुस्से का इजहार करता हुआ रेत पर हर उस व्यक्ति का नाम लिखता जो उसका शोषण करता है, फिर निर्दयतापूर्वक उसकी हत्या कर देता है। 1972 में लिखा गया यह उपन्यास उनके संघर्ष के दिनों का जीवंत बयान भी है।

गरीबी, जहालत, किल्लत के ऐस चित्र इब्राहिम शरीफ की कई कहानियों में भी हैं। उनके क्रमशः दो कथा-संकलन आए: 'कई शहरों के बीच' और 'जमीन का आखिरी टुकड़ा'। पहला संकलन 1972 में आया, दूसरा 1973 में। पहले संकलन में ग्यारह कहानियां हैं, दूसरे में चौदह।पांच अन्य कहानियां भी हैं। यानी इब्राहिम शरीफ ने अपनी लेखकीय जीवन में कुल तीस कहानियां लिखीं। संख्या के हिसाब से एक कथाकार के लिए इतनी कहानियां काफी नहीं मानी जाएंगी पर वे कहानियां उस दौर के युवाओं की मानसिक अवस्था का जीवंत दस्तावेज है'। ...बेरोजगारी, डिग्री और योग्यता के अनुरूप कोई कार्य नहीं मिलने पर कैसे युवा गलत कार्यों की ओर मुड़ जाते हैं, इसके कई दृश्य उनकी कहानियों में हैं। इसीलिए ये कहानियां आज फिर से पढ़े जाने की मांग करती हैं।

इब्राहिम शरीफ कहते हैं कि 'मैंने आजतक लेखन के नाम पर जो कुछ भी लिखा है, उन्हीं लोगों की स्थितियों पर लिखा है जिन्हें मैंने जीवन में देखा, पहचाना और भोगा है।'....'गर्दिश के दिन' में वे लिखते हैं कि एक मुसलमान होते हुए उन्होंने हिन्दी पढ़ी पर आज भी एक हिन्दू एक मुसलमान को किराये पर मकान देना नहीं चाहता। उसे वह शहर की मौत मानता है। 'बौद्धिक' कहानी में इसीलिए वह कहता है- 'किसी भी वक्त यह शहर मरकर ढेर हो सकता है।' ...इसी तरह 'ये कबतक कहानी बनेंगे' का प्रमुख पात्र छुट्टन कहता है - 'यह शहर कोई गांव जैसा थोड़े है? यहां हर चीज सोने के दाम बिकती है। गांवों का क्या है, थोड़ा भी कमा लो, ठीक से रहा जा सकता है।' 'यह जो बिल्डिंग देख रहा है न तू यह सरकार की है। इतनी ऊंची बिल्डिंग तो सारे हिन्दुस्तान में कहीं नहीं है।' पर मिद्दू को छुट्टन की ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। वह उस ऊंची बिल्डिंग की तरफ नजर उठाकर अकड़कर खड़ा होते हुए छुट्टन से कहता है- 'छुट्टन, साली दिल्ली शहर में भी गरीबी बहुत है... देख रहा है।' ....पर तब भी आदमी अपनी जड़ों से उखड़कर शहर की ओर भाग रहा है। वैसे कस्बों या गांवों में नहीं रहने की उसकी मजबूरियां भी हैं पर शहर भी उसे वह सब कुछ नहीं दे सकता जिसकी ललक उसे वहां खींच ले जाती है। और इस यात्रा में कभी-कभी जमीन का आखिरी टुकड़ा' भी बिक जाता है। हालांकि 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' की मां इस आखिरी टुकड़े को अपने से अलग करना नहीं चाहती, वह कहती है कि यह उसके पति की आखिरी निशानी है पर बेटे इसे अपने अस्तित्व के लिए जरूरी मानते हैं। जब अस्तित्व ही नहीं बचेगा तो जमीन का यह टुकड़ा किस काम का! वैसे भी जब जीवन तंग होने लगता है तो सम्पत्ति खत्म होने लगती है। एक-एक कर सबकुछ बिकता चला जाता है, जमीन के आखिरी टुकड़े तक। छोटू कहता है - 'निशानी-विशानी कुछ नहीं होती मां...पिताजी ने हमारी जरूरतों के लिए तो जमीन रखी थी। बड़दा बड़बड़ाते हैं- 'हमारी जमीनें इतनी जल्दी नहीं बिकतीं, लेकिन आधी तो सूद पर ही चली गई.... साले इब्बू का ब्याज तो आग जैसा है ...जलाकर राख कर देनेवाला ....साल गुजरा कि कर्जे की रकम दुगनी हो जाती है। यहां इब्बू का होना 'अंधेरे के साथ' के चेयरमैन की याद दिलाता है।

इब्राहिम शरीफ एक अल्प उम्र तक ही जिए, इसलिए अंधेरे के विरुद्ध उजाले की लड़ाई लड़ने की उनकी ख्वाहिश पूरी नहीं हो सकी। वह लिखते हैं- 'सूरज गायब हो गया है। मैं क्षितिज में उसे बहुत टटोलता हूं। उसका कहीं नामोनिशान नहीं है। सम्भवतः वह सागर द्वारा चाट लिया गया है।' (अंधेरे का साथ) ...हालांकि वे जीवन को समाप्त नहीं मानते, वे लिखते हैं - 'जीवन और मृत्यु के तंतु छूट नहीं पाते हैं। जीवन और मृत्यु जुड़े हुए हैं। कोई मरता नहीं है।' (वही) ...इसलिए सामाजिक परिवर्तन को अन्तिम परिणति तक पहुंचाने की जो लड़ाई वे लड़ रहे थे, वह रुकी नहीं। उनके जीवन-काल में सामाजिक बदलाव के दो आंदोलन खड़े हुए - एक सातवें दशक में वसंत का वज्रनाद, जिसे हम नक्सलबाड़ी आंदोलन के नाम से पुकारते हैं, जिसमें बंगाल, तेलंगाना और केरल बहुत ज्यादा प्रभावित रहे और दूसरा आठवें दशक का जयप्रकाश नारायण द्वारा शुरू किया गया सम्पूर्ण क्रांति का आंदोलन जिसका केन्द्र मूल रूप से बिहार रहा। इन आंदोलनों के वे प्रत्यक्ष या परोक्ष सहभागी भी रहे पर एक लेखक जैसा समाज चाहता है, वैसा समाज नहीं मिलने पर वह जितना बेचैन दिखता है उतना ही इब्राहिम शरीफ अपनी कहानियों में दिखते हैं। इसीलिए अपने उपन्यास का शीर्षक अंधेरे को केन्द्र में रखकर देते हैं ...जैसे 'अंधेरे के साथ'। उनके दो और उपन्यासों का उल्लेख मिलता है जिसका शीर्षक है - 'अंधेरे का सिलसिला' और 'अधूरे अनबने मकान'। सम्भव है ये उपन्यास तब अधूरे अनबने ही रह गये हों और जिसका मलाल उन्हें जीवन भर रहा हो। क्योंकि पहले कथा-संग्रह में जिन कई सूरजों का जिक्र है, वे कालांतर में कैसे काले बादलों से घिरते चले गए या फिर किन परिस्थितियों में समन्दर उन्हें लील गया!

वह उन्नीस सौ सतहत्तर में हुए अपने निधन के बाद हिन्दी समाज में लगभग हाशिए पर रहे। उन्हें न तो समांतर कहानी आंदोलन के उनके साथियों ने याद किया और न ही हिन्दी पट्टी के अन्य लेखकों ने। वे लगातार पीछे ठिलते चले गए और गुमनामी में पड़े रहे! क्या हिन्दी कथा का मौजूदा समाज उन्हें फिर से याद करेगा ताकि आज की पीढ़ियां जान सकें कि इब्राहिम शरीफ कौन थे? हिन्दी समाज का यह एक जरूरी कार्यभार है। ■

> सत्तर के दशक में इब्राहिम शरीफ 'गर्दिश के दिन' में लिखते हैं कि एक मुसलमान होते हुए उन्होंने हिन्दी पढ़ी, पर आज भी एक हिन्दू एक मुसलमान को किराये पर मकान देना नहीं चाहता। उसे अपनी पहचान छिपाकर मकान लेना पड़ता है। ...'मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं कि अपने देश के किसी गांव या शहर के किसी मकान-मालिक के पास जाकर कह सकूं कि मैं इब्राहिम शरीफ आपका मकान किराये पर चाहता हूं"

महावीर प्रसाद द्विवेदी एक और जयंतियां चार

आचार्य की रचनावली के संपादक भारत यायावर पांच साल पहले 2020 में ही तीन को अवास्तविक करार देकर एक अन्य 'वास्तविक जयंती' बता चुके हैं

कृष्ण प्रताप सिंह

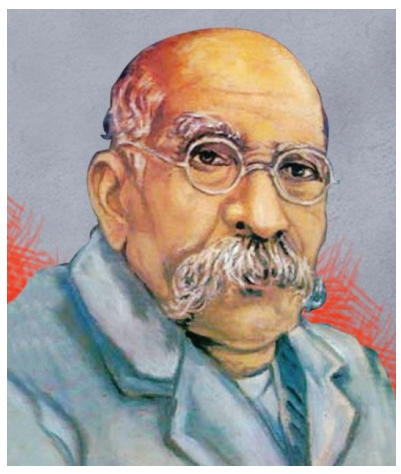

आज हम हिन्दी के जिस गद्य से नानाविध लाभान्वित हो रहे हैं, वर्तमान स्वरूप, संगठन, वाक्य विन्यास, विराम चिह्नों का प्रयोग तथा व्याकरण की शुद्धता आदि सब कुछ काफी हद तक उनके या उनके द्वारा प्रोत्साहित विभूतियों की ही देन है

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी का निर्माता कहा जाए, पुरोधा, खड़ी बोली का उन्नायक अथवा 'द्विवेदी युग' का प्रणेता, बात है कि पूरी नहीं होती। दरअसल, उनका व्यक्तित्व है ही इतना बहुआयामी कि इतने सारे विशेषणों में भी पूरा-पूरा समाने से मना कर देता है। तिस पर इधर उनके साथ एक और आयाम आ जुड़ा है। जहां आचार्य द्विवेदी जैसे हिन्दी के कई निर्माता हिन्दी जगत की विस्मरण की प्रवृत्ति के इस तरह शिकार हैं कि उनकी स्मृतियों पर जमी धूल उनकी जयंतियों और पुण्यतिथियों पर भी नहीं झाड़ी जाती, आचार्य द्विवेदी की तीन-तीन जयंतियां मनाई जाती हैं, जबकि उनकी रचनावली के संपादक साहित्यकार भारत यायावर पांच साल पहले 2020 में ही इन तीनों को अवास्तविक करार देकर एक अन्य 'वास्तविक जयंती' भी बता चुके हैं।

गनीमत है कि वास्तविक-अवास्तविक चारों जयंतियां मई महीने में ही पड़ती हैं : विकीपीडिया के अनुसार, वह 15 मई, 1864 को पैदा हुए थे लेकिन कहीं उनकी जयंती 9 मई को, तो कहीं पांच मई को कार्ल मार्क्स की जयंती के साथ ही मना ली जाती है। इनके बरक्स भारत यायावर कह गए हैं कि द्विवेदी जी की रचनावली के संपादन के क्रम में उन्हें ज्ञात हुआ था कि वास्तव में उनका जन्म 6 मई,1864 को हुआ था। इसलिए 6 मई ही उनकी जयंती है। अन्य तीनों जयंतियां विद्वानों के बीच फैले भ्रम की जाई हैं।

लेकिन यह भ्रम है कि भारत यायावर के इस संसार को अलविदा कह जाने के बाद भी छंटने को तैयार नहीं है और अभी भी चार अलग-अलग वास्तविक-अवास्तविक तारीखों पर समारोहपूर्वक द्विवेदी जयंती मनाई जाती है। ऐसे में स्वाभाविक ही यह सवाल बड़ा हो जाता है कि द्विवेदी जी की यादों को ऐसी विडंबना के हवाले क्यों कर दिया गया है? क्या उनकी उन सेवाओं का यह उपयुक्त सिला है जो उन्होंने ऐसे कठिन समय में हिन्दी के सेवक के तौर पर कीं, जब वह अपने कलात्मक विकास की तो क्या सोचती, नाना प्रकार के अभावों से ऐसी बुरी तरह पीड़ित थी कि उसके लिए उनसे निपट पाना ही दूभर हो रहा था।

प्रसंगवश, हिन्दी के ऐसे दुर्दिन में उन्होंने नींव की ईंट बनकर ज्ञान के विविध क्षेत्रों, जैसे इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्व, चिकित्सा, राजनीति और जीवनी आदि से संबंधित साहित्य के सृजन, प्रणयन एवं अनुवादों की मार्फत न सिर्फ उसके अभावों को दूर किया बल्कि 'अराजक' गद्य को मांजने-संवारने, पुष्ट-परिष्कृत तथा परिमार्जित करने का लक्ष्य निर्धारित कर उसकी पूर्ति में अपना समूचा जीवन लगा दिया।

आज हम हिन्दी के जिस गद्य से नानाविध लाभान्वित हो रहे हैं, वर्तमान स्वरूप, संगठन, वाक्य विन्यास, विराम चिह्नों का प्रयोग तथा व्याकरण की शुद्धता आदि सब कुछ काफी हद तक उनके या उनके द्वारा प्रोत्साहित विभूतियों की ही देन है। वह हिन्दी के उन गिने-चुने आचार्यों में से एक हैं जिन्होंने हिन्दी के निर्माणकाल में इन चीजों पर विशेष बल देकर लेखकों की अशुद्धियों को इंगित करने का खतरा उठाया। स्वयं तो लिखा ही, दूसरों से लिखवाकर भी उसके गद्य को समृद्ध किया।

प्रसंगवश, उनका जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिला मुख्यालय से 55 किलोमीटर दूर गंगा के किनारे बसे बेहद पिछड़े दौलतपुर गांव में रामसहाय द्विवेदी के पुत्र के रूप में हुआ था। उन दिनों वहां तक पहुंचने के लिए सड़क कौन कहे, कोई ठीक-ठाक रास्ता तक नहीं था। दिलचस्प यह कि राम सहाय ने अपने नाम से तुक-ताल मिलाकर बेटे का नाम रखा था- महावीर सहाय। लेकिन बेटा गांव की प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने गया तो प्रधानाध्यापक ने उसका नाम 'महावीर सहाय' के बजाय 'महावीर प्रसाद' लिख दिया। पिता राम सहाय समय रहते इस ओर ध्यान नहीं दे पाए और आगे चलकर प्रधानाध्यापक की यह भूल स्थायी बन गई।

13 वर्ष के होते-होते महावीर प्रसाद अंग्रेजी पढ़ने रायबरेली जिला स्कूल गए जहां संस्कृत के वैकल्पिक विषय के रूप में उन्होंने साल भर फारसी पढ़ी। थोड़ी-बहुत शिक्षा उन्होंने उन्नाव और फतेहपुर जिलों के स्कूलों में भी पाई। फिर पिता के साथ मुंबई चले गए जहां संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अध्ययन किया।

कहते हैं कि उनकी ज्ञानपिपासा कभी तृप्त नहीं होती थी। जीविका के लिए रेलवे में विभिन्न पदों और बाद में झांसी में जिला ट्रैफिक अधीक्षक के कार्यालय में मुख्य लिपिक के दायित्व निभाने से तो वैसे भी तृप्त नहीं होना था। इसलिए नौकरियों के साथ उन्होंने अपनी सृजन-यात्रा भी जारी रखी और पांच साल ही बीते थे कि उच्चाधिकारी से न निभ पाने के कारण उन्हें ट्रैफिक कार्यालय की नौकरी से त्यागपत्र दे देना पड़ा।

जैसा कि बहुत स्वाभाविक था, इसके बाद उन्हें कई टेढ़े-मेढ़े रास्तों और उतार-चढ़ावों से गुजरना पड़ा। उनके जीवन में एक बड़ा मोड़ 1903 में आया जब वह अपने वक्त की प्रतिष्ठित 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक बने और 1920 तक इस दायित्व को पूरी निष्ठा एवं जिम्मेदारी से निभाते रहे। आमतौर पर उनके 'सरस्वती' के इस संपादनकाल को ही 'द्विवेदी युग' की संज्ञा दी जाती है, जबकि कुछ आलोचक इस युग की शुरुआत इससे कुछ वर्ष पहले से मानते हैं।

जो भी हो, आचार्य द्विवेदी सर्जक भी थे, आलोचक भी और अनुवादक भी। उन्होंने 50 से अधिक ग्रंथों और सैकड़ों निबंधों की रचना की। साथ ही संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओं से महत्वपूर्ण अनुवादों की मार्फत भी हिन्दी को समृद्ध किया। उनके संस्कृत से अनूदित ग्रंथों में रघुवंश, महाभारत, कुमारसंभव, और किरातार्जुनीयम शामिल हैं जबकि अंग्रेजी से अनूदित ग्रंथों में बेकन विचारमाला, शिक्षा और स्वाधीनता आदि उल्लेखनीय हैं।

उनकी सेवाएं इतनी ही नहीं हैं। उन्होंने हिन्दी समाज को कुरीतियों और रूढ़ियों से उबारने के नए आयाम एवं आदर्श भी प्रदान किए। स्त्रियों की दृष्टि से अत्यंत दारुण बीसवीं सदी के उस शुरुआती समय में उन्होंने एक दुर्घटना में असमय दिवंगत अपनी पत्नी की स्मृति में मंदिर बनवाया। अपने गांव-जवार और जिले में उनकी एक सरल, विरल एवं विलक्षण विद्वान की छवि थी, लेकिन वह इस छवि के बंदी नहीं थे। उस काल में महाव्याधि की तरह फैली छुआछूत की बीमारी के तो वह बड़े ही मुखर विरोधी थे। एक बार उनके गांव की एक दलित महिला के पैर के अंगूठे में जहरीले सांप ने काट खाया, तो वहां उपस्थित आचार्य द्विवेदी को सांप के जहर को महिला के शरीर में चढ़ने से रोकने और उसका जीवन बचाने का तत्काल कोई और रास्ता नहीं दिखा, तो उन्होंने झट अपना जनेऊ उतारा और उसके अंगूठे में कसकर बांध दिया। बाद में इसकी कीमत चुकाने को अभिशप्त होने पर भी वह अपने इस मत से विचलित नहीं हुए कि उस वक्त वही उनका कर्तव्य था।

अपने जीवन के अंतिम वर्ष उन्होंने नाना कठिनाइयों के बीच अपने गांव दौलतपुर में ही काटे। 21 दिसंबर 1938 को वहीं उनका निधन हो गया। रायबरेली जिले में उनकी दो प्रतिमाएं स्थापित कराई गई हैं। एक जिला मुख्यालय पर और दूसरी उनके गांव में। 2013 में उनके 150वें जयंती वर्ष में उनकी स्मृतियों के संरक्षण के लिए 1936 में बाबू श्यामसुंदर दास और रायकृष्ण दास के संपादन में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'आचार्य द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ' का नेशनल बुक ट्रस्ट से पुनर्प्रकाशन हुआ। यह दुर्लभ अभिनंदन ग्रंथ आचार्य द्विवेदी के 70वें वर्ष में प्रवेश के मौके पर छपा था। इसकी भूमिका 1932 में बनी थी जब आचार्य द्विवेदी एक दिन के लिए काशी पहुंचे थे। तब सभा द्वारा उनको एक अभिनंदन पत्र दिया गया था और आचार्य शिवपूजन सहाय ने उनके अभिनंदन ग्रंथ के प्रकाशन का अनुरोध किया था।

लेकिन सभा के लिए इस ग्रंथ का प्रकाशन आसान नहीं सिद्ध हुआ था। ग्रंथ की भूमिका में भी इसका उल्लेख है- 'विषम आर्थिक परिस्थिति के कारण हमें आर्थिक सहायता प्राप्त करने में बड़ी अड़चन पड़ी। ... बड़े-बड़े श्रीमानों तक ने हमें कोरा उत्तर दे दिया। यदि सीतामऊ के राजकुल ने हमारा हाथ न पकड़ा होता, तो संभवतः हमें यह प्रस्ताव स्थगित कर देना पड़ता।' ■

Published Date 18 May, 2025 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

जो छूट गए, जरा उन्हें भी तो याद कर लो!

आपदा की तैयारी सायरन की तेज आवाज से नहीं बल्कि इस बात से मापी जाती है कि उसके बजने पर कौन सुरक्षित रह पाता है

पुनीत सिंह

भारत के आधा दर्जन शहरों में 7 मई को अफरातफरी मच गई। स्कूलों ने बच्चों को अंधेरे गलियारों में धकेल दिया, दफ्तरों ने परदे बंद कर लिए, लोग अंदर के कमरों में दुबक गए। केन्द्रीय गृह मंत्रालय पाकिस्तान से संभावित सैन्य झड़प के मद्देनजर तैयारियों का जायजा लेना बताता था कि 'हर जिंदगी मायने रखती है।'

लेकिन मेरे ब्लॉक में इस दस मिनट ने एक अलग कहानी बयां की। मैंने व्हीलचेयर इस्तेमाल करने वाले एक व्यक्ति को बिना लिफ्ट वाली इमारत की तीसरी मंजिल पर फंसा देखा, सायरन नहीं सुनने वाली एक बहरी दादी को देखा, अपने में खोए एक ऑटिस्टिक किशोर को देखा और शांत कोने को तलाशते एक डायबिटीज रोगी को देखा। ड्रिल ने एक ऐसे भविष्य का पूर्वाभ्यास किया जिसमें हममें से कुछ लोग बच निकलते और कुछ 'गायब' हो जाते।

जाना-पहचाना पैटर्न

आपातकालीन योजना तैयार करते समय विकलांग व्यक्तियों पर ध्यान नहीं होता जबकि सबसे ज्यादा दांव पर वे ही होते हैं। दुनिया भर में संघर्षों और आपदाओं के दौरान उनके हताहत होने की आशंका चार गुना होती है (यूएनसीएचआर)। जापान की 2011 की सुनामी, तुर्की के 2023 के भूकंप, यूक्रेन युद्धः हर जगह यही विफलता दोहराई गई- बिना रैंप वाले आपात निकासी मार्ग, शेल्टर जहां मदद पहुंचाने के लिहाज से तंग जगह, यह मानकर जारी की जाने वाली चेतावनियां कि हर कोई देख-सुन-भाग सकता है, तनाव में संयत रह रख सकता है।

इस संदर्भ में भारत बेहतर प्रदर्शन कर सकता है क्योंकि उसके पास वैधानिक प्रावधान और दिशानिर्देश भी हैं, फिर भी इसके ऊपर लिखे देशों की सूची में शामिल होने का जोखिम है।

वैधानिक कर्तव्य की अनदेखी विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम (2016) की धारा 24 के तहत, सभी आपदा प्रबंधन योजनाओं, मॉक ड्रिल और बचाव कार्यों में विकलांगों को ध्यान में रखा जाए।

धूल फांकते दिशा-निर्देश राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने छह साल पहले विकलांगों को ध्यान में रखते हुए प्रोटोकॉल जारी किए थे, - मल्टीसेंसरी अलर्ट से लेकर सुलभ आश्रयों तक, लेकिन 7 मई के अभ्यास में उनमें से किसी का पालन नहीं किया गया।

ड्रिल से उजागर 5 बड़ी कमियां

एक ही माध्यम की चेतावनी सायरन, मेगाफोन और ऊंची आवाज में जारी आदेश के अलावा कुछ नहीं। न वाइब्रेशन अलर्ट, न एसएमएस, न रोशनी बिखेरती बीकन और न कोई चित्रमय संकेत। बहरे, कम सुनने वाले, कम पढ़े-लिखे या बिना फोन वाले किसी भी व्यक्ति को निर्देश नहीं मिले।

केवल सीढ़ियों से निकासी 'सुरक्षित क्षेत्र' बेसमेंट, गैराज या मेट्रो अंडरपास थे, जहां लिफ्ट बंद होने पर एस्केलेटर या अंधेरी सीढ़ियों से ही पहुंचा जा सकता था। व्हीलचेयर का इस्तेमाल करने वालों, लाचार बुजुर्गों और बैसाखी पर चलने वाले लोगों के पास ड्रिल के पांच मिनट के निर्धारित समय में निकलने का कोई व्यावहारिक रास्ता नहीं था।

सबकी नहीं सुध सायरन, भीड़ की अफरातफरी और तेज आवाज वाले आदेशों के मिश्रण ने ऑटिस्टिक या ऐसे अन्य लोगों के लिए घबराहट पैदा कर दी। तनाव घटाने के लिए शांत कमरे, विजुअल सामग्री या प्रशिक्षित स्वयंसेवक नहीं थे।

चिकित्सा निरंतरता की अनदेखी अस्थायी शेल्टरों में पानी तो था, लेकिन ऑक्सीजन सिलेंडर, इंसुलिन रेफ्रिजरेशन या वेंटिलेटर और पावर चेयर के लिए बैटरी नहीं थी। पुरानी बीमारियों के लिए खतरा बमों से नहीं बल्कि देखभाल की निरंतरता टूटने से होता है।

विकलांगों से नहीं पूछा स्थानीय विकलांगता संगठनों से सलाह नहीं ली गई। सरल, कम लागत वाले समाधान- कलर कोडेड तीर, 'बडी या मित्र सिस्टम', रैंप रेट्रोफिट - को योजना में रखा जा सकता था।

वास्तविक संघर्ष में यह क्यों अहम

अगर भारत-पाकिस्तान में फिर झड़प बढ़ती है, तो उत्तरी गलियारा न केवल मिसाइलों बल्कि शहरी व्यवधानों को भी झेलेगा ब्लैकआउट के कारण लिफ्ट काम नहीं करेंगे, पेट्रोल की कमी देखभाल करने वालों के कदम रोकेगी, अस्पतालों में पहले से भर्ती मरीजों की देखभाल में संभावित कमी। इन सबको जोड़कर देखें तो नतीजे घातक हो सकते हैं।

निकासी में देर अगर पहले पांच मिनट चूक गए तो परिवार सड़कों पर जाम या लाइव फायरिंग में फंस सकता है।

स्वास्थ्य सेवा का चरमराना जब आपातकालीन वार्डों में ट्रॉमा के केस ज्यादा हो जाते हैं तो डायलिसिस, कीमोथेरेपी और रिहैबिलिटेशन जैसी सुविधाएं उपेक्षित हो जाती हैं।

इन प्रभावों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, यानी योजना बनाने में इनपर विचार न करना इनकी जानबूझकर की गई अनदेखी है।

> यह खयाल रखना जरूरी कि पांचवीं मंजिल के फ्लैट में फंसे किसी व्हीलचेयर उपयोगकर्ता, रुकी हुई मेट्रो में किसी दृष्टिबाधित यात्री, बाजार में सब्जी बेचने वाले किसी बधिर को कैसे सहूलियत हो। अगर योजना इन लोगों के लिए काम करती है तो यह कहीं भी काम करेगी

कानूनी और नैतिक मामला

भारत का संविधान समानता की गारंटी देता है; विकलांग व्यक्तियों के अधिकार से जुड़ा 2016 का अधिनियम उस गारंटी को कर्तव्यों में बदलता है। मॉक ड्रिल और वास्तविक प्रतिक्रियाओं में विकलांग व्यक्तियों को ध्यान में रखने की बाध्यता है हालिया अभ्यास उसका उल्लंघन करता है।

निकासी की व्यवस्था अपने आप सबके लिए काम करनी चाहिए। सबको इसमें शामिल करना कोई सामाजिक 'दान' नहीं, सामरिक बुद्धिमत्ता है। 'विशेष सहायता' से लेकर प्रणालीगत तत्परता तक: आठ व्यावहारिक समाधान

#1 सबको ध्यान में रखकर हो अभ्यास

हर अभ्यास की शुरुआत विकलांगों को ध्यान में रखकर हो। खयाल हो कि पांचवीं मंजिल के फ्लैट में फंसे किसी व्हीलचेयर उपयोगकर्ता, रुकी हुई मेट्रो में किसी अंधे यात्री, बाजार में सब्जी बेचने वाले किसी बधिर को कैसे सहूलियत हो। अगर योजना इन लोगों के लिए काम करती है तो यह कहीं भी काम करेगी।

#2 मल्टीनोडल अलर्ट

साइरन को वाइब्रेशन पुश-नोटिफिकेशन, सार्वजनिक इमारतों में एलईडी स्ट्रोब, रेडियो कैप्शन क्रॉल और आसानी से पढ़े जाने वाले चित्र पोस्टर के साथ जोड़ें। इससे लोगों की जान बचेगी।

#3 सुलभ आश्रय

रैंप, चौड़े दरवाजे, स्पर्श से समझ मे आने वाले रास्ते, कम ऊंचाई वाले शौचालय, शांत कमरे और जनरेटर-समर्थित कूलिंग के लिहाज से सुरक्षित क्षेत्रों की ऑडिट। ऑक्सीजन, ग्लूकोमीटर, दौरे पड़ने की दवाएं और व्हीलचेयर-मरम्मत किट स्टॉक करें।

#4 पड़ोसी मित्र तंत्र

हर वार्ड का नक्शा बनाएं, स्वयंसेवकों को विकलांग या बुजुर्ग निवासियों के साथ जोड़ें। अभ्यास में मित्र की आवाजाही, स्थान-साझाकरण और कमांड सेंटर को रिपोर्टिंग की जरूरतों का अभ्यास करना चाहिए।

#5 सहायक उपकरण रसद

वार्ड कार्यालयों में व्हीलचेयर, सफेद छड़ियां, हियरिंग एड बैटरी और पावर-बैंक चार्जर का आपातकालीन स्टॉक रखें। सुनिश्चित करें कि निकासी वाहन भारी उपकरण सुरक्षित रख सकें।

#6 सबसे पहले मदद करने वालों का प्रशिक्षण

पुलिस, नागरिक रक्षा दल और रेजिडेंट वेलफेयर एसोसिएशन के लिए क्रैश कोर्स कि अंधे व्यक्ति का मार्गदर्शन कैसे करें, व्हीलचेयर को कैसे उठाएं।

#7 नीति एकीकरण और बजट

जिले के आपदा बजट में विकलांगता सुविधाओं को अनिवार्य बनाएं। इसके अनुपालन से फंडिंग को जोड़ें।

#8 पारदर्शी फीडबैक लूप

प्रत्येक अभ्यास के बाद, विकलांग प्रतिभागियों की गवाही के साथ-साथ यह प्रकाशित करें कि क्या विफल हुआ और क्या बेहतर हुआ और अगले अभ्यास से पहले प्रोटोकॉल अपडेट करें।

सायरन बजने पर प्रशासकों के लिए चेकलिस्ट

- क्या सभी अलर्ट को देखकर, सुनकर, स्पर्श करके और पढ़कर समझा जा सकता है?
- क्या किसी भी मंजिल पर स्थित व्हीलचेयर उपयोगकर्ता पांच मिनट के भीतर आश्रय तक पहुंच सकता है?
- क्या प्रत्येक आश्रय में जीवन रक्षक दवाएं और बिजली बैकअप हैं?
- जिन्हें मदद की जरूरत है, उनके लिए स्वयंसेवक नियुक्त किए गए?
- क्या कोई सार्वजनिक रिपोर्ट उपेक्षित रह गई?

अगर इनमें से किसी का भी जवाब 'नहीं' है, तो योजना सही नहीं।

आपदा की तैयारी सायरन की तेज आवाज से नहीं बल्कि इस बात से मापी जाती है कि सायरन बजने पर कौन सुरक्षित जगह पर पहुंच पाता है। एक राज्य जो अपनी आबादी के सातवें हिस्से की अनदेखी करते हुए तत्परता का दावा करता है, वह उन लोगों की जान गंवाने की जमीन तैयार कर रहा है जिन्हें वह बचा सकता था।

जब अगली ड्रिल होती है, तो कल्पना करें कि व्हीलचेयर उपयोगकर्ता निकासी स्लेज के माध्यम से आसानी से नीचे उतर रहा है, बहरी दादी एक चमकती हुई बीकन से संदेश पा रही है, ऑटिस्टिक किशोर एक विज़ुअल कार्ड से निर्देशित हो रहा है और एक शांत-संयत स्वयंसेवक है। जो योजना उन्हें सुरक्षित करेगी, वह हम सब को सुरक्षित करेगी। ■

जरूरी तो यह है चेन्नई चक्रवात फेंगल के दौरान एक शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्ति खुद को सुरक्षित रखने की कोशिश में कुछ इस तरह दिखाई दिया। दरअसल आपदा प्रबंधन प्राधिकरणों की सभी इकाइयों के लिए जरूरी है कि योजनाओं की तैयारी, मॉक ड्रिल और बचाव कार्यों में विकलांग व्यक्तियों को अवश्य शामिल किया जाए ताकि जरूरत के कठिन समय में वह अपने बचाव में खुद भी सक्षम रहें।

मानसिक बीमारी के अंधेरे के खिलाफ सुबह का सफर

सैयदा हमीद

भौगोलिक रूप से, यह 2,779 किलोमीटर की यात्रा थी। भावनात्मक रूप से यह समाज के उन इलाकों, मिथकों, पूर्वाग्रहों और मनगढ़ंत कहानियों की उस दुनिया में उतरना था जहां और जिनके जरिये वैसे लोगों का मजाक बनाया जाता है, जो मन की अदृश्य लेकिन गहरी टीस देने वाली बीमारियों से ग्रस्त हैं। क्लिनिकल डिप्रेशन और बॉर्डरलाइन पर्सनालिटी डिसऑर्डर से जूझने के दौरान सहर हाशमी का अनुभव इस बात का उदाहरण है कि 'सामाजिक कलंक' की बीमारी का शिकार होने का अहसास कैसा होता है और भुक्तभोगी पर क्या गुजरती है।

20 अप्रैल 2025 को कवि, चित्रकार, फैशन स्टाइलिस्ट सहर हाशमी और राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता देव देसाई दिल्ली से कुपवाड़ा और फिर वापसी की सड़क यात्रा पर निकले। सहर और देव अपनी रॉयल एनफील्ड बाइक पर आगे-आगे चल रहे थे। पीछे एक कार में मूवी कैमरा के साथ सवार थे धुले की सक्रिय कार्यकर्ता और गायिका नाजनीन शेख, सतना/रीवा के फिल्म निर्माता समन्यु शुक्ला और कश्मीर के मेडिकल स्नातक मेहराजुद्दीन भट।

'ब्रेकिंग स्टिग्माः वन माइल ऐट अ टाइम' अभियान शुरू हो चुका है। तीन गुना ज्यादा नतीजों की उम्मीद में सहर की सोच से निकले इस अभियान का मकसद हैः मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में जन-जागरूकता के साथ ऐसी मुश्किलों का सामना कर रहे युवाओं को प्रोफेशनल्स की मदद लेने के लिए प्रोत्साहित करना तथा मानसिक बीमारी से ग्रस्त लोगों के लिए एक सहायक वातावरण को बढ़ावा देना।

तमाम लोग, खास तौर पर भारत और दक्षिण एशिया में ऐसे हैं जो मानसिक बीमारी से जुड़ी तमाम भ्रांतियों, गलत-सलत किस्से-कहानियों तथा सामाजिक सोच के कारण न सिर्फ पेशेवर मदद से दूर रहते हैं, बल्कि मजबूरी में इसका दंश झेलते रहते हैं। ऐसी ही धारणाओं, सोच तथा सामाजिक पूर्वाग्रहों को बदलने के मजबूत इरादे के साथ, सहर ने जगह-जगह प्रभावी वीडियो प्रदर्शन और कार्यशालाओं के जरिए अपनी कहानी साझा करनी शुरू की। अपने घर की दहलीज पार कर वह एक ऐसे सफर में उतर चुकी थीं, जहां स्वीकृति, सामाजिक स्वीकार्यता और परस्परिकता की कोई गारंटी नहीं थी। यहां सिर्फ साहस और दृढ़ संकल्प का मतलब था और यही मुद्दे की बात थी।

> सहर ने जिस अभियान का सपना देखा था, उसका उद्देश्य न सिर्फ मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े मिथकों, पूर्वाग्रहों और मनगढ़ंत कहानियों को सामने लाना था, बल्कि यह इस भयावह कलंक के जरिये अनुभव की जाने वाली 'शर्म' को हमेशा के लिए मिटा देने का एक सचेत प्रयास भी था

मानसिक स्वास्थ्य के साथ सहर की अपनी लड़ाई ने उन्हें इस बात की प्रामाणिक समझ दी कि भावनाओं का दमन, अंदर ही अंदर घुटते रहना क्या होता है। कैसा होता है इसका अहसास। 'बहिष्कार' और 'अलगाव' के दंश पर जीत का ही असर था, जिसने उनके अंतर्मन पर ऐसा असर डाला कि मानसिक स्वास्थ्य को लेकर व्याप्त सामाजिक सोच और 'कलंक को तोड़ने' के इरादे से यह यात्रा वजूद में आयी।

सहर ने जिस अभियान का सपना देखा था, उसका उद्देश्य न सिर्फ मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े मिथकों, पूर्वाग्रहों और मनगढ़ंत कहानियों को सामने लाना था, बल्कि यह इस भयावह कलंक के जरिए अनुभव की जाने वाली 'शर्म' को हमेशा के लिए मिटा देने का एक सचेत प्रयास भी था।

सहर का काफिला उत्तर भारत के कस्बों और गांवों में घूम-घूम कर इंटरएक्टिव कार्यशालाओं का आयोजन करता रहा। दर्शक और प्रतिभागी न सिर्फ स्कूल और कॉलेज के छात्र-छात्राएं, बल्कि समाज के सभी तबकों के लोग थे। हर कार्यशाला एक ऐसे अवसर में तब्दील होती दिखी जहां मानसिक स्वास्थ्य और आघात के साथ वार्ताकार के अपने अनुभवों ने दर्शकों, युवाओं और वृद्धों को न सिर्फ चौंकाया बल्कि उन वास्तविकताओं का एहसास भी कराया, जिनका उन्होंने पहले कभी सामना नहीं किया था। सहर भले ही अपने मानसिक स्वास्थ्य संघर्षों के बीच खुद को फिर से तलाश रही थीं, लेकिन उनका यह अभियान इस समय और समाज के भीतर सहानुभूति और सहयोग की शर्मनाक कमी की ओर इशारा करने में सफल रहा।

अनंतनाग, बारामुल्ला, चंडीगढ़, दिल्ली, जालंधर, जम्मू, कांगड़ा, खुमरियाल, कुपवाड़ा, लुधियाना, मुकेरियां, नरवाना, रोहतक, सोगाम, सोपोर, श्रीनगर, पट्टन, ववूरा से करीब 3,500 युवा पुरुष और महिलाएं 30 संवाद सत्रों में शामिल हुए। इनमें छात्रों के साथ ग्राम समाज तथा मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े प्रोफेशनल भी थे। सब ने एक स्वर में कहाः "मानसिक बीमारी से जुड़े कलंक से लड़ें और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर रहे लोगों को प्रोफेशनल्स की मदद लेने के लिए प्रोत्साहित करें।"

हालांकि सबकुछ अनुकूल ही नहीं रहा। आगे बढ़कर पहल करने वाले इन युवाओं की राह में बाधा डालने में प्रकृति भी पीछे नहीं रही और बादल फटने के कारण राष्ट्रीय राजमार्ग 44 एक सप्ताह के लिए बंद हो गया! हालांकि, टीम इसके लिए भी तैयार थी। प्रकृति का डटकर सामना किया। उन्होंने राजौरी, सुरनकोट, शोपियां से होते हुए पहाड़ों के बीच सबसे मुश्किल, सबसे जोखिम भरा रास्ता चुना और 11,450 फीट ऊंचे पीर पंजाल दर्रे को पार किया। कड़ी ठंड और बारिश उनके दृढ़ संकल्प और लचीलेपन दोनों की ही परीक्षा लेती रही, लेकिन वे अविचलित आगे बढ़ते रहे। कश्मीर में अनगिनत जगहों पर उनका गर्मजोशी से, खुले हाथ स्वागत हुआ।

शाबाश, सहर, देव, नाज़नीन, समन्यु और मेहराज। शायर हैदर अली आतिश के शब्दों में कहना होगाः

'सफ़र है शर्त मुसाफ़िर नवाज़ बहुतेरे,
हज़ार-हा शजर-ए-साया-दार राह में हैं।' ■

सैयदा हमीद लेखक के साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं और योजना आयोग की सदस्य रही हैं।

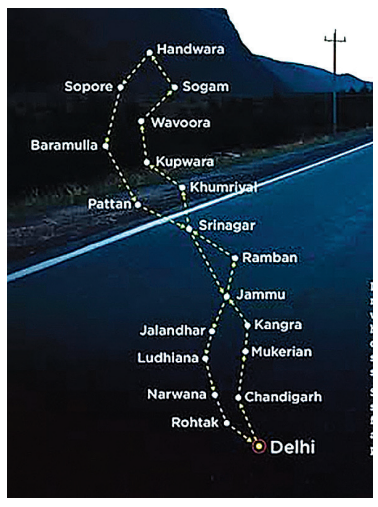

जीवट का अभियान मानसिक स्वास्थ्य जन-जागरूकता अभियान के दौरान ऐसी मुश्किलों का सामना कर रहे युवाओं को प्रोफेशनल्स की मदद लेने के लिए प्रोत्साहित करने की कार्यशाला और अपनी लंबी रोड-ट्रिप के सहयात्रियों के साथ सहर हाशमी।